इकाई - 22

(सिद्धान्त कौमुदी) विभक्त्यर्थ प्रकरण

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

हम एम० ए० पूर्वार्द्ध के पाठ्यक्रम **MASA-04 (**भारतीय काव्यशास्त्र एवं व्याकरण**)** की इकाई सं० २२**(**सिद्धान्तकौमुदी **–** विभक्त्यर्थ प्रकारण का अध्ययन करने जा रहे है जिसके निम्नलिखित उद्देश्य है **–**

- व्याकरण शास्त्र की सामान्य जानकारी।
- सिद्धान्त कौमुदी का सामान्य ज्ञान।

- प्रतिपादिकार्थ विचार, कर्मसंज्ञा, कर्मप्रवचनीय संज्ञा, सम्प्रदान अपादान अधिकरण आदि संज्ञाओं का ज्ञान।
- प्रथमा विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति तक सिध्दान्तकौमुदी के आधार पर सूत्रानुसारी ज्ञान।

22.1 प्रस्तावना

व्याकरणशास्त्र को वेदों का मुख कहा गया है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कहा भी है "**षट्स्वङ्गेषु प्रधानं व्याकरणम्, मूले च कृतो यत्नः फलवान् भवति**" छः अङ्गों में व्याकरणशास्त्र मुख्य है।

व्याकरण की परिभाषा

व्याक्रियन्ते व्युत्पद्यन्ते असाधुशब्देभ्यः विविच्य साधुशब्दाः क्रियन्ते अर्थात् असाधु शब्दों से अलग कर साधु शब्द का विवेचन करने वाला शास्त्र व्याकरण है। व्याकरण शास्त्र का दूसरा नाम शब्दानुशासन है।

22.1.1 वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी : एक परिचय

व्याकरण शास्त्र की ब्रह्मा से चली आ रही है 'यथाऽऽचार्य ऊचुर्ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच...... " महर्षि पाणिनि से पूर्व पूर्व 65 वैयाकरण ऋषियों का नाम परिगणित है। वर्तमान में सर्वप्राचीन सम्पूर्ण तथा वैज्ञानिक समुपलब्ध पाणिनि व्याकरण है, अतः सर्वाधिक प्रसिद्धि को प्राप्त पाणिनि व्याकरण में व्याख्या ग्रन्थ भी बहुलतया प्राप्त है।

इस व्याकरण की अध्ययन पद्धति दो प्रकार की है - सूत्रक्रम तथा प्रक्रियाक्रम सूत्रक्रम के अनुसार काशिका आदि ग्रन्थ लिखे गये प्रक्रियाक्रम के अनुगत वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी प्रभृतिग्रन्थ लिखे गये हैं। वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी के कर्ता भट्टोजिदीक्षित हैं इन्होंने कौमुदी पर प्रौढमनोरमा नाम का व्याख्या लिखी जो कि ग्रन्थ को और भी सुस्पष्ट करती है। आज कौमुदी का ही अध्ययन अध्यापन अधिक है। यह ग्रन्थ प्रकरणों में विभक्त है इसमें 82 प्रकरण है। संज्ञा सन्धि षड्लिंग अव्यय के अनन्तर कारक प्रकरण है। विद्वानों ने कारक को व्याकरण शास्त्र का हृदय माना है। इस प्रकार 16 शताब्दी का यह ग्रन्थ पाणिनि व्याकरण के मर्म को प्रकट करने में पूर्णतया सक्षम है।

22.1.2 कारक लक्षण एवं परिचय

आचार्यों ने कारक के लक्षण निम्नवत किये हैं -

1. क्रियानिमित्तत्वं कारकत्वम्
2. क्रियाजनकत्वम्
3. क्रियानिष्पादकत्वम्
   (अर्थात् क्रिया का निष्पादक तत्त्व कारक है।)
4. क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्
5. कर्तृकर्मत्वादिषट्कान्यत्तमत्वे सति क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्।
6. धात्वर्थांशे प्रकारो यः सुबर्थः सोऽत्र कारकम्।
7. अपादानाद्यन्यतमत्वं कारकत्वम्।

सभी लक्षणों में क्रिया का महत्त्व है। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि साक्षात् परम्परया वा क्रिया को जो निष्पन्न करे वह कारक है। सम्बन्ध का अन्वय क्रिया में नहीं होने के कारण कारक नहीं है किन्तु परम्परा सम्बन्ध से अधिकरण कारक अवश्य है। क्रिया से सम्बन्ध होने के कारकों का प्रभेद कर्त्रादि छः हैं-

कर्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च।

अपादानाधिकरणं चेत्याहुः कारकाणि षट्।

अर्थात् - कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान एवं अधिकरण ये छः प्रकार के कारक है। "यतो न लघीयः अन्वर्थं नाम सा संज्ञा" इस सिद्धान्त के अनुसार कर्ताकर्मादि अर्थ का ध्वनन हो जा रहा है क्रमशः कर्त्रादि संज्ञाविधायक सूत्र का उल्लेख किया जाता है -

1. स्वतन्त्रः कर्ता (पा.01/04/54)
2. कर्तुरीप्सिततमं कर्म (पा.सू. 1/04/49)
3. साधकतमं करणम् (पा.सू. 1/4/42)
4. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् (पा.सू. 1/4/32)
5. ध्रुवमपायेऽपादानम् (पा.सू. 1/4/24)
6. आधारोऽधिकरणम् (पा.सू. 1/4/45)

उपर्युक्त सूत्र मुख्य रूप से कर्त्रादि संज्ञा विधायक हैं इनके अवान्तर सूत्र भी कर्त्रादि संज्ञा करते हैं।

22.1.3 विभक्ति परिचय

महर्षि पाणिनि के अनुसार 'विभक्तिश्च' (पा.सू. 1/4./04) के अनुसार सुप् और लिङ् के तीन-तीन प्रत्ययों के गण को विभक्ति कहते हैं। यथा -

सुप्	सु	औ	जस्	-	प्रथमा
	अम्	औट्	शस्	-	द्वितीया
	टा	भ्याम्	भिस्	-	तृतीया
	ङे	भ्याम्	भ्यस्	-	चतुर्थी
	ङसि	भ्याम्	भ्यस्	-	पञ्चमी
	ङ्स्	ओस्	आम्	-	षष्ठी
	ङि	ओस्	सुप्	-	सप्तमी

तिङ्	तिप्	तस्	झि	-	प्रथमपुरुषः
	सिप्	यस्	य	-	मध्यमपुरुषः
	मिप्	वस्	मस्	-	उत्तमपुरुषः
	त	आताम्	झ	-	प्रथमपुरुषः
	थास्	आथाम्	ध्वम्	-	मध्यमपुरुषः
	इट्	वहि	महिङ्	-	उत्तमपुरुषः

उपर्युक्त प्रत्ययों की विभक्ति संज्ञा होता है। किन्तु प्रथम, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी तथा सप्तमी की प्रसिद्धि है।

विभक्तियों के दो रूप हैं - (1) कारक विभक्ति (2) उपपद विभक्ति। क्रिया से सम्बन्ध होने पर कारक विभक्ति होती है। पदों से सम्बद्ध होने पर उपपद विभक्ति होती है -

प्रथमा विभक्ति

कारक विभक्ति

अभिधानमात्र में प्रथमा विभक्ति होती है चाहे वह कोई भी कारक हो। यथा **-ज्वलयति अग्निः** (कर्ता), **पच्यते ओदनः** (कर्म), **स्नानीयं चूर्णम्** (करण), **दानीयो विप्रः** (सम्प्रदान), **भीमो राक्षसः** (उपादान) **आसनं पीठम्** (अधिकरण)। इसीलिये महर्षि पाणिनि ने प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा का विधान किया है। जिसके अनुसार सत्ता, लिङ्ग, परिमाण या वचन मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है - उच्चैः, कुमारी, द्रोणः

एकः। इन सभी में अभिहित कर्ता है, इसका सम्बन्ध गम्यमान आदि क्रिया से हैं। यदि कोशादि ग्रन्थों में क्रिया विरहित रूप में प्रथमा का प्रयोग हो तो इसे अपपदविभक्ति कहा जा सकता है।

उपपदविभक्ति - सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है - हे राम! तथा सम्बन्ध के अभिहित होने पर प्रथमा विभक्ति होती है। यथा - **गोमान् रामः**।

द्वितीया विभक्ति

(1) सभी प्रकार के अभिहित कर्मों में द्वितीया विभक्ति होती है। यथा – **घटं** करोति (2) कतिपय प्रयोज्य कर्ता में भी कर्म – कारक मानकर द्वितीया विभक्ति होती है। यथा – **विप्रं** ग्रामं गमयति शिशुं शाययति।

उपपदभिक्ति – अन्तरा, अन्तरेण आदि पदों के कारण तथा कर्मप्रवचनीय संज्ञा के कारण हुई द्वितीया विभक्ति उपपद विभक्ति की श्रेणी में है।

तृतीया विभक्ति

अनभिहित कर्ता तथा करण में तृतीया विभक्ति होती है : यथा **रामेण बाणेन** हतो बाली।

उपपदविभक्ति- काल तथा अध्ववाचक शब्दों के प्रयोग में यदि व्याप्ति के साथ-साथ फलप्राप्ति (अपवर्ग-कार्य समाप्ति) का भी बोध हो तो उनमें तृतीया होती है - **मासेन** तद्धिताः अधीताः **क्रोशेनानुवाकोऽधीतः।** इसी प्रकार - प्रकृत्या चारू प्रायोण याज्ञिकः, शशिना सह, अक्ष्णा काणः इत्यादि प्रयोगों को उपपद विभक्ति का उदाहरण समझना चाहिए।

चतुर्थी विभक्ति

कारक विभक्ति - सभी सम्बद्ध सूत्रों तथा वार्तिकों के द्वारा विहित अनभिहित सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा - **ब्राह्मणाय** गां ददाति, **पत्ये** शेते, **बालकाय** मोदकः रोचते।

उपपदविभक्ति - (क) तादर्थ्य (एक वस्तु का दूसरी वस्तु के लिए होना) ज्ञात होने पर चतुर्थी होती है। यथा - **यूपाय** दारु, **कुण्डलाय** हिरण्यम्, रन्धनाय स्थाली, ब्राह्मणाय दधि काव्यं यशसे।

(ख) तुमुन्प्रत्यय के समानार्थक जो कृत्यप्रत्यय (घञ्, ल्युट् आदि) भाव अर्थ में विहित हो तो उससे बने हुए कृदन्त शब्द में चतुर्थी होती है- पाकाय (पक्तुम्) अग्निमाहरति।

(ग) नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वष्ट आदि के योग में चतुर्थी होती है। यथा **- गुरवे नमः**, राज्ञे स्वस्ति, **अग्नये स्वाहा।**

(घ) आशीर्वादार्थ आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, अर्थ तथा हित इन शब्दों के योग में चतुर्थी तथा षष्ठी विभक्तियाँ होती हैं। यथा - आयुष्यं देवत्ताय (देवदत्तस्य) भूयात्।

पञ्चमी विभक्ति

कारक विभक्ति

सभी प्रकार के अनभिहित अपादानों में पञ्चमी विभक्ति होती है, यथा - वृक्षात्पतति, चौराद् बिभेति, उपाध्यायादधीते।

उपपदविभक्ति - जिस (अवधि) में मार्ग और समय की नाप की जारा उसमें पञ्चमी होती है, तथा अन्य, आरात् (समीप) इतर, ऋते (विना) सामान्यतया सभी दिशावाचक शब्दों के योग में पञ्चमी होती है। यथा - **पाटलिपुत्राद** राजगृहं सप्तयोजनानि, **तस्मादन्यः**, भिन्नः, विलक्षणः इतरः, उत्तरो **ग्रामात्** इत्यादि।

षष्ठी विभक्ति

कारक विभक्ति

यद्यपि षष्ठी विभक्ति का अपना कोई भी कारक नहीं होता क्योंकि षष्ठी से मुख्यतया द्योतित होने वाला सम्बन्ध कारक नहीं है, तथापि कतिपय दूसरे कारकों में षष्ठी का प्रयोग होता है। इस प्रकार शेषषष्ठी ही सम्बन्ध है तथा कारकषष्ठी किसी विशेष सूत्र के द्वारा कर्मत्वादि में षष्ठी विभक्ति के विधान को कहते हैं। यथा - 'सोऽविदर्थस्य कर्मणि' (2-3-51) मधुनो जानीते (मधु के द्वारा उसकी प्रवृत्ति होती है) इत्यादि।

उपपद विभक्ति - कर्मादि से भिन्न तथा प्रातिपदिकार्थ से भी पृथक् स्वस्वामिभावादि सम्बन्धों के शेष कहते हैं - इसमें शेषषष्ठी होती है। यथा - पितुः पुत्रः, पशोः, पादः इत्यादि।

सम्बन्ध का बोध कराने वाली शेष षष्ठी के भेदों की कोई सीमा नहीं क्योंकि संसार में अनेक प्रकार के सम्बन्ध की गणना की है -

(1) नृपस्य धनम् - स्वस्वामिभाव। (2) हरेर्वदनम्-अवयवातयति भाव। (3) अध्यापकस्य व्याख्यानम् - वाच्यवाचक भाव। (4) गङ्गाया जलम् (आधाराधेयभाव)। पितुस्तनयः - जन्य जनकसम्बन्ध। (6) भट्टस्य शिष्यः - विद्यासम्बन्ध। (7) अश्वस्य घासः - भक्ष्य भक्षक भाव। (8) वस्तस्य तन्तुः - कार्यकारणभाव।

सप्तमी विभक्ति

कारकविभक्ति

अनभिहित (अनुक्त) कारक में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा - वने वसति, धर्मे वेदाः प्रमाणम्, तिलेषु तैलम्, गङ्गायां घोषः, स्थाल्यां पचति।

उपपदविभक्ति - साधु-असाधु के प्रयोग में, तत्त्व कथन में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा - साधुः कृष्णः मातरि असाधुः मातुले। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम् (पा. 2-3-37) इत्यादि सूत्रों के पदमात्र को निमित्त मान कर सप्तमी विभक्ति का विधान होता है।

22.2 प्रथमा विभक्ति

विभक्तियों में सर्वप्रथम प्रथमा का प्रयोग है। प्रथमादि व्यवहार पाणिनि से पूर्व भी प्रयुक्त होता रहा है। वस्तुतः विभक्तियों का अर्थ बताने के कारण ही कारक प्रकरण को विभक्त्यर्थ कहा गया है।

22.2.1 प्रतिपदिकार्थादिविचार

'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' (पा. 2/3/46)

व्याख्या - व्यापक रूप से अर्थ का बोध कराने वाले को प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। मात्र शब्द का सूत्रस्थ प्रत्येक शब्द के साथ अन्वय होता है, अतः प्रातिपदिकार्थ का बोध करोन के लिए प्रातिपदिकार्थ के साथ लिङ्गमात्र अधिक का बोध कराने के लिए परिमाण मात्र का बोध कराने के लिए तथा संख्या मात्र का बोध कराने के लिए प्रथमा विभक्ति की जाती है।

प्रकृत सूत्र में दो पद हैं जिनमें प्रथम अर्थात् प्रातिपदिकार्थ लिङ्गपरिमाणवचन शब्द में द्वन्द्व समास किया गया है -

प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्गञ्च वचनञ्चेति प्रातिपदिकार्थ लिङ्गपरिमाण वचनानि। इसके अन्त में श्रूयमात्र 'मात्र' शब्द अवधारण अर्थ में प्रयुक्त है, तथा अवधारण शब्द का अर्थ है - अन्योग व्यवच्छेद अर्थात् अन्य पद से सम्बन्ध का अभाव। इस प्रकार मात्र शब्द का प्रत्येक पद के साथ अन्वय होने पर **प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्रे परिमाणमात्रे** तथा **वचनमात्रे** यह अर्थ सम्पन्न होता है।

यहाँ पर "द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बद्ध्यते" अर्थात् 'द्वन्द्व' समास के अन्त में सुनाई देने वाले पद का प्रत्येक साथ अन्वय होता है अतः मात्र का सम्बन्ध प्रत्येक के साथ हुआ यहाँ पर 'द्वन्द्वान्ते' पद में 'अन्त' शब्द पर समीप का वाचक है न कि अवसान का।

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः

अर्थात् जिस प्रातिपदिक का उच्चारण करने पर जिस किसी सम्बन्ध अर्थ का व्यापक रूप से बोध होता है वह प्रातिपदिकार्थ है।

उदाहरण - 'रामः' शब्द का उच्चारण करने पर राम, रामत्व, पुंल्लिङ्ग, पुंस्त्व रूप मर्यादा अर्थ व्यापक रूप से बोध हो रहा है। अतः वह प्रातिपदिकार्थ है।

अलिङ्गः - उच्चैः नीचैः। ये दोनों स्वरादिगण में पठित होने से उच्चैस् नीचैस् इस तरह सकरान्त अव्यय है। उच्चैः = ऊर्ध्व स्थान में, नीचैः = निम्न स्थान में।

नियतलिङ्गः - 'कृष्णः' यहाँ कृष्ण शब्द वसुदेवापत्य अर्थ पुस्त्व में विवक्षित है। 'श्रीः' लक्ष्मी आदि वाचक स्त्रीलिङ्ग में नियत लिङ्ग है। 'ज्ञानम्' बोध अर्थपरक ज्ञानशब्द नित्य नपुंसक लिङ्ग है।

अनियतलिङ्ग - 'तटः' तटी तटम्' तट शब्द का तीनों लिङ्गों में प्रयोग होता है। अतः इसे अनियत लिङ्ग कहा गया है।

परिमाणमात्रे - द्रोणो व्रीहिः - अर्थात् जिससे तोला या मापा जाये वह परिमाण कहलाता है। अतः प्रातिपदिकार्य के साथ परिमाण मात्र की अधिकता का ज्ञान होने पर प्रथमा विभक्ति की जाती है।

यहाँ प्रयुक्त द्रोण शब्द माप का बोधक है –

अष्टमुष्टिर्भवेत् क्रुञ्च कु रुञ्चैरष्टाभिराढकम्।

अष्टाढको भवेद् द्रोणः खारी द्रोणो प्रकीर्तितः॥

अर्थात् - आठ मुट्ठी धान्य को क्रुञ्च कहते हैं, आठ क्रुञ्च को आढक अढैया तथा आठ अढैया को एक द्रोण कहते हैं जिसे खारी नाम से भी जाना जाता है। द्रोण (विशेष परिमाण) सु (सामान्य परिमाण) परिच्छेद्य (नपा हुआ) परिच्छेदक (नापने वाला) सम्बन्ध से व्रीहिः (धान) में अन्वय हुआ।

वचन - वचनं संख्याअर्थात् "एकः द्वौ बहवः"। यहाँ यह भी शङ्का होती है कि **एकः द्वौ बहवः** उदाहरणों के द्वारा एकत्व, द्वित्व एवं बहुत्व की नियत से ही प्रथमा विभक्त सिद्ध है, अतः सूत्र में 'वचन' पद की कोई आवश्यकता नहीं है। आशय यह है कि एकत्व द्वित्व तथा बहुत्व अर्थ उसके प्रकृति रूप एक द्वि तथा बहु शब्दों से ही प्रकट है इनसे सम्बद्ध सु औ तथा जस् प्रत्यय भी क्रमशः एकत्व द्वित्व तथा बहुत्व का प्रतिपादन करते हैं, अतः 'उक्तार्थानामप्रयोगः' न्याय से प्रथमा विभक्ति नहीं होनी चाहिए किन्तु प्रथमा विभक्ति का विधान हो इसलिए प्रकृत सूत्र में 'वचन' पद का ग्रहण आवश्यक है। जैसा कि ग्रन्थकार का स्वयं का कथन है ' "इहोक्तार्थत्वाद् विभक्तेर प्राप्तौ वचनम्।"

22.2.2 सम्बोधन

सम्बोधन को प्रथक् विभक्ति न मान कर प्रथमा विभक्ति ही माना जाता है।

सम्बोधने च (पा.सू. 2-3-47)

व्याख्या - सम्बोधन की अधिकता दिखाई पड़ने पर प्रथमा विभक्ति होती है।

सम्बोधन का अर्थ है - अभिमुखीकृत्य ज्ञापन। अर्थात् जो वक्ता के अभिमुख नहीं है उसे अभिमुख करके कुछ कहना। वक्ता के द्वारा प्रयुक्त वचन को ध्यान में रखकर उसे स्वीकार करने में आदर भाव होना। यहाँ वक्ता की ओर मुख करके वचन का श्रवण करना व्यञ्जक है तथा उससे सम्बन्धित कार्य में प्रवृत्ति तथा निवृत्ति ही फल है। सम्बोधन अर्थ वाली इस प्रथमा विभक्ति को "अनुवाद्यविषया' कहा गया है, अर्थात् जो पहले से ही सिद्ध (विद्यमान) है उसी को वक्ता अपने अभिुख करता है। यथा - **'राजन्!** युद्धस्वा' **हे राजन्!** युद्ध करो।

सम्बोधन में होने वाले प्रथमार्थ कैसे कारक माना जाये ? यह विचारणीय प्रश्न है। क्योंकि यहाँ क्रियाजनकता का अभाव है। वाक्यपदीयकार सम्बोधन को कारक न मानने का वैज्ञानिक कारण स्पष्ट करते हैं। उनके

अनुसार कारक का सम्बन्ध क्रियानिष्पादन से है। वाक्य में प्रयुक्त सभी कारक क्रिया का समर्थन करते है, किन्तु सम्बोधन न तो वाक्यार्थ का अङ्ग बनता है और न ही क्रिया की पूर्णता में किसी तरह का योगदान ही देती है -

सम्बोधनं न वाक्यार्थ इति वृद्धेभ्य आगमः।

उद्देश्येन न विभक्त्यर्थाः वाक्यार्थात् समुपोद्धृतः॥

लघुमञ्जूषाकार नागेश भट्ट के अनुसार सम्बोधन विभिक्ति का अन्वय 'त्वम्' में अभेद सम्बन्ध से करके परम्परया क्रिया से प्रथमा विभक्ति अथवा अधिकरण की तरह कारक मानते हैं।

22.3 द्वितीया विभक्ति

अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है अन्यथा प्रथमा विभक्ति होती है।

कारके (पा.सू. 1/14/23)

व्याख्या - यह अधिकार सूत्र है, उत्तरोत्तर सूत्रों से सम्बद्ध होगा। अष्टाध्यायी सूत्रपाठ में 'कारके' (पा.सू. 1/4/23) से लेकर 'स्वतन्त्रः कर्ता' (पा.सू. 1/4/54) तक कारक प्रकरण है तथा 'अनभिहिते' (पा.सू. 2/3/7) से चतुर्थी चाशिष्या..... (2/3/73) तक विभक्ति से सम्बन्धित है। इस प्रकार कारके तथा अनभिहिते का अधिकार कारक प्रकरण को सम्पूर्णता प्रदान करता है।

कर्तुरीरिसततमं कर्म (पा.सू. 1/4/49)

व्याख्या - कर्ता के द्वारा निष्पन्न होने वाली क्रिया से अत्यधिक ईप्सित कारक की कर्म संज्ञा होती है।

कर्तु: किम् ? माषेष्वश्वं बध्नाति -

'धातोः कर्मणः "समानकर्तृकादिच्छायां वा' सूत्र से इच्छा अर्थ में सन् का विधान होता है और वह इच्छा चूंकि कर्त्ता में विद्यमान है अतः 'कारके' सूत्र से अधिकार से कर्तुपद का स्वतः ग्रहण हो जाने से प्रकृत सूत्र में 'कर्तु:' पद के ग्रहण विषयक प्रश्न का उपस्थापन किया गया है। इसका समाधान यह है कि 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' सूत्र से कर्ता की स्वयं की क्रिया से जो अत्यधिक अभीष्ट होता है उसकी कर्म सञ्ज्ञा होती है, फलतः 'माषेष्वश्वं बध्नाति' अर्थात् - माषभक्षण में 'प्रवृत्त अश्व को बांधता है' इस प्रत्युदाहरण में 'माष' कर्मरूप में विद्यमान अश्व को ईप्सित है न कि कर्ता को। कर्ता का ईप्सिततम तो अश्व है न कि माष। इसलिये ईप्सिततम अश्व की कर्म सञ्ज्ञा करके उसमें द्वितीया विभक्ति की गयी है। कर्तुः पद के अभाव में कर्म के ईप्सित् माष की भी कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति होने लगेगी जो इष्ट नहीं है। अतः 'माष' शब्द में होने वाली कर्म सञ्ज्ञा की निवृत्ति के लिए सूत्र में 'कर्तुः' पद का ग्रहण नितान्त आवश्यक है।

तमब्ग्रहणं किम्- पयसा ओदनं भुङ्क्ते

ईप्सित शब्द से अतिशय अर्थ में तमप् प्रत्यय के अभाव मे 'पयसा ओदनं भुङ्क्ते' (दूध से भात खाता है) इस प्रत्युदाहरण में ईप्सित मात्र 'पयः' की भी कर्म सञ्ज्ञा हो जाती जो इष्ट नहीं है। 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' से होने वाली कर्मसञ्ज्ञा ईप्सिततम की ही होती है न कि ईप्सित मात्र की। यहाँ 'पयः' पदार्थ ईप्सिततम न होकर ईप्सितमात्र है जो ओदन में सहायक है। तात्पर्य यह है कि कर्ता 'भुजि' क्रिया के द्वारा पयः और ओदन दोनों को 'ओदन' की प्रमुखता है। अत्यधिक ईप्सित ओदन की तो कर्मसञ्ज्ञा होती है किन्तु 'पयः' के ईप्सित तथा साधकतम संस्कारक द्रव्य होने के कारण उसकी करण सञ्ज्ञा हुई है।

सूत्रस्थ कर्मपद ग्रहणप्रयोजन

अष्टाध्यायी के प्रथम अध्याय में 'आधारोऽधिकरणम्' (पा. 1/4/45) 'अभिशीङ् स्थासां कर्म' (1/4/46) 'अभिनिविशश्च' (1/4/47) उपान्वध्याङ्वसः (1/4/48) कर्तुरीप्सिततमं कर्म (1/4/49) सूत्र क्रम में पढ़े गये हैं। इस दृष्टि से यहाँ यह शङ्का की गयी है कि प्रकृत सूत्र में 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' सूत्र से कर्म पद की अनुवृत्ति से ही कार्य सिद्ध हो जाता है, यहाँ पुनः कर्मपद निष्प्रयोजन है। इसका समाधान यह है कि

'अधिशीङ् .... से यहाँ पर कर्म पद अनुवर्तन की दशा में उसके साथ वहाँ अनुवृत्त 'आधार' पद का भी ग्रहण होने लगता जिससे यह अर्थ गतार्थ होता है कि आधारवाचक शब्द की कर्मसञ्ज्ञा होती है। फलतः 'गेहं प्रविशति' सदृश वाक्य में आधार वाचक 'गेह' शब्द की ही कर्म सञ्ज्ञा होती हरिं भजति आदि वाक्यों में आधार से भिन्न में इष्ट कर्म संज्ञा नहीं होती। अतः 'आधार' पद की निवृत्ति को ही ध्यान में रखकर यहाँ कर्म पद का ग्रहण किया गया है।

अकथितं च (पा. सू. 1/4/51)

व्याख्या - अकाथित शब्द का अर्थ है - असङ्कीर्तित न कहा गया। अर्थात् अपादान आदि संज्ञाओं का उन्हीं रूपों में कथन न किया गया।

'विवक्षातः कारकाणि भवन्ति' कारक विवक्षा के अधीन होते हैं अतः जो विभक्ति जिससे प्राप्त होती है उसका विधान तो नियमतः होता ही है किन्तु यदि उसकी विवक्षा अभिप्रेत न हो तो उसमें कर्म संज्ञा करके द्वितीया विभक्ति हो जाती है।

क्रमशः परिगणन -

दुह् = दुहना, याच् = मांगना, पच् = पकाना, दण्ड = दण्ड देना, रुधि = रोकना, प्रच्छि = पूछना, चि = चुनना, ब्रू = बोलता, शास् = उपदेश देना, जि = जीतना, मथ् = मथना, मुष् = चुराना, नी, हृ, कृष्, वह् = ले जाना।

उदाहरण

1 **गां** दोग्धि पयः - (गोः) अपादान की अविवक्षाः गाय को दुहता है।

2 **बलिं** चाचते वसुधाम् - (बलेः) अपादान की अविवक्षा, बलि से वसुधा मांगता है।

3 **तण्डुलान् -** ओदनं पचति (तण्डुलैः) करण की अविवक्षा तण्डुल (चॉवल) से ओदन (भात) बनाता है।

4 **गर्गान** शतं दण्डयति (गर्भेभ्यः) सम्प्रदान की अविवक्षा गर्गों को सौ रुपये का दण्ड देता है।

5 **व्रजम्** अवरुणद्धि गाम् (ब्रजे) अधिकरण की अविवक्षा व्रज में गाय को रोकता है।

6 **माणवकं** पन्थानं पृच्छति (माणवकेन) करण की अविवक्ष बालक को रास्ता पूछता है।

7 **वृक्षम्** अवचिनोति फलानि (वृक्षात्) अपादान की अविवक्षा वृक्ष से फल तोड़ता है।

8 **माणवकं** धर्मं ब्रूते शास्ति वा (माणवकाय) सम्प्रदान की अविवक्षा। बालक को धर्म का उपदेश, शासन करता है।

9 **शतं** जयति देवदत्तम् - (शतात्) अपादान की अविवक्षा देवदत्त से सौ रुपये जीतता है।

10 **सुधां** क्षीरनिधिं मथ्नाति (क्षीरनिधौ) अधिकरण की अविवक्षा अम। अमृत के लिए समुद्र को मथता है।

11 **देवदत्तं** शतं मुष्णाति (देवदत्तात्) आपदान की अविवक्षा। देवदत्त से सौ रुपये चुराता है।

12 **ग्रामम्** अजां नयति (ग्रामे) अधिकरण की अविवक्षा।

13 **ग्रामम्** ऊजां हरति। कर्षति। वहति (ग्रामे) अधिकरण की अविवक्षा। गाँव में अजा (बकरी) ले जाता है।

इन सभी सोलह धातुाओं के योग में अपादान आदि की अविवक्षा होकर कर्म संज्ञा हुई तथा द्वितीया विभक्ति का विधान हुआ। उपर्युक्त उदाहरणों में अपादान आदि की अविवक्षा हो कर्म को ही गौण कर्म कहते हैं।

अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा - पूर्वोक्त सोलह धातुओं से सम्बन्धित कर्म सञ्ज्ञा स्वरूपाश्रय न होकर 'अर्थ निबन्धना' है।

माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्ति - यहाँ 'ब्रू' धातु की समानार्थ है।

कारकं किम् ? - यदि कारक की अनुवृत्ति नहीं करेंगे तो 'माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति' (बालक के पिता से मार्ग पूछता है) में सम्बन्ध माणवकस्य की भी कर्म संज्ञा होने लगेगी।

(वा) : अकर्मकधातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तत्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्।

व्याख्या - अकर्मक धातुओं के योग अर्थात् सम्बन्ध होने पर देश, काल, भाव, गन्तव्य तथा अध्वा (मार्ग) वाचक शब्द की कर्मसञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - देशवाचक - **कुरुम्** स्वपिति - (कुरु देश में सोता है) यहाँ अकर्मक स्वप् धातु के योग में देशवाचक 'कुरु' शब्द की प्रकृत वार्तिक से कर्मसञ्ज्ञा करके द्वितीया विभक्ति हुई।

कालवाचक - **मासम्** आस्ते (महीने भर रहता है) यहाँ अकर्मक आस् धातु के योग में काल वाचक 'मास' शब्द की कर्म संज्ञा होने पर द्वितीया विभक्ति हुई।

भाववचाक - गोदोहमास्ते (गाय के दुहे जाने तक रहता है) कर्म संज्ञा एवं द्वितीया विभक्ति हुई।

गन्तव्य अध्वा - **क्रोशमास्ते** (कोशपर्यन्त रहता है) यहाँ पर कर्म संज्ञा हुई अतः द्वितीया विभक्ति है।

गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थ शब्दकर्माकर्मकाणामपि कर्ता स णौ। (पा.सू. 1/4/52)

शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्,
आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम्।
आसायत् सलीले पृथीं यः स मे हरिर्गतिः॥

व्याख्या - गत्यर्थक, बुद्ध्यर्थक, प्रत्यवसानार्थक (भक्षणार्थक) शब्दकर्मक तथा अकर्मक धातु से सामान्य वाक्य (प्रेरणार्थक णिच् प्रत्यय से रहित) के कर्ता की प्रेरणार्थक वाक्य बनाने पर कर्मसञ्ज्ञा हो जाती है।

ध्यातव्य है कि णिच् प्रत्यय का प्रयोग दो अर्थों में होता है - स्वार्थ अर्थात् धातु के ही अर्थ में तथा प्रेरणा देने के अर्थ में। प्रकृत सूत्र में प्रेरणर्थक णिच् प्रत्यय का ही ग्रहण किया गया है। उदाहरण -

शत्रूनगमयत्स्वर्गं वेदार्थं स्वानवेदयत्,
आशयच्चामृतं देवान्वेदमध्यापयद्विधिम्।
आसायत् सलीले पृथीं यः स मे हरिर्गतिः॥

	प्रेरणार्थक वाक्य	**साधारण वाक्य**
गत्यर्थक	शत्रून् अगमयत् स्वर्गम्	शत्रवः स्वर्गम् अगच्छन् तान् श्रीहरिः प्रैरयत्।
बुद्ध्यर्थक	वेदार्थः स्वानवेदयत्	स्वे = स्वकीयाः, वेदार्थमविदुः तान् श्रीहरिः वेदार्यम् अवेदयत्।
प्रत्यवसानार्थक	आशयच्चामृतं देवान्	देवा अमृतम् आश्नन् तान् श्रीहरिः आशयत्।
शब्दकर्मक	वेदमध्यापयद् विविध	विधिः वेदम् अध्यैत तं श्रीहरिः वेदम् अध्यापत्।
अकर्मक	आसयत् सलिले पृथ्वीं	पृथ्वी सलिले आस्त तां श्रीहरिः सलिले आसयत = स्थापितवान्

इन उदाहरणवाक्यों में क्रमशः गमनार्थक ज्ञानार्थक भक्षणार्थक तथा अकर्मक धातु का प्रयोग किया गया है। फलतः इनके साधारण वाक्य के कर्ता की प्रेरणार्थकदशा में प्रकृतसूत्र से कर्म सञ्ज्ञा करके द्वितीया विभक्ति कर दी गयी है।

प्रत्युदाहरण

1- सूत्र में यदि गतिबुद्ध्यादि पद नहीं रखते तो गत्यादि से भिन्न पच् धातु का णिच् प्रत्यय के योग में कर्ता (देवदत्त) कर्म होने लगेगा। जबकि वहाँ देवदत्तेन ही होना चाहिए।

2- पाचयति ओदनं **देवदत्तेन =** देवदत्त से चावल बनवाता है। यदि अण्यन्तानाम् यह पद नहीं देंगे तो प्रेरणार्थक ण्यन्त में पुनः प्रेरणार्थल दशा में कर्त की कर्म सञ्ज्ञा होने लगेगी।

गमयति देवदत्तः यज्ञदत्तम् तमपरः प्रयुङ्क्ते, गमयति देवदत्तेन यज्ञदत्तं विष्णुमित्रः।

(वा) **'नीह्योर्न'** नाययति वाहयति वा भारं भृत्येन।

व्याख्या - प्राणणार्थक णिच् प्रत्ययान्त नी तथा वह् धातु के प्रयोग की दशा में साधारण वाक्य के कर्ता (प्रयोज्य कर्ता) की प्रेरणार्थक दशा में 'गति बुद्धि..........' सूत्र से कर्म सञ्ज्ञा नहीं होती है।

उदाहरण - नाययति बाहयति वा भारं भृत्येन - भृत्यः भारं नयति, वहति, तं स्वामी प्रेरयति। यहाँ प्राणणार्थक नी तथा वह् धातु के प्रयोग में साधारण वाक्य के कर्ता 'भृत्य' शब्द की प्रेरणार्थक दशा में 'गतिबुद्धि ....' सूत्र से प्राप्त कर्म संज्ञा का प्रकृत वार्तिक से निषेध क्र दिये जाने पर उस अनुक्त कर्ता में तृतीया विभक्ति कर दी गयी है।

(वा) **नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः** वाहयति रथं वाहान् सूतः।

व्याख्या - वह (प्रापजे) धातु के प्रयोग में प्रयोजक कर्ता के नियन्ता = पशु प्रेरक होने पर साधारण वाक्या के कर्ता की प्रेरणर्थक दशा में कर्म सञ्ज्ञा को जाती है।

उदाहरण - वाहयति रथं **वाहान्** सूत्रः- सूत्र गतिबुद्धि...... सूत्र से गत्यर्थक (वहति) धातु के योग में कर्म (वाहान्) की प्राप्ति थी 'नीवहयोर्न' (वा) से निषेध हो गया पुनः इस वार्तिक से कर्म संज्ञा हुई तथा 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति हुई।

'आदिखाद्योर्न' (वा.)

व्याख्या - उद् तथा खाद् धातु से प्रयोग में प्रयोज्य कर्ता की प्रेरणार्थक दशा में कर्म सञा नहीं होती है।

उदाहरण - आदयति खादयति वा अन्नं बटुना,
बटु (ब्राह्मण पुत्र) से अन्न खिलाता है।

विग्रह - बटुः अन्नम् अत्ति, खादति तं माता प्रेरयति। प्रत्यवसार्थक धातु होने के कारण **'गति बुद्धि ......'** सूत्र से कर्म संज्ञा की प्राप्ति थी इस वार्तिक से निषेध कर दिया गया।

(वा) **भक्षेरहिंसार्थस्य न**

व्याख्या - अहिंसार्थक भक्ष् धातु के प्रयोग में प्रयोज्य कर्ता की प्रेरणार्थक दशा में कर्म संज्ञा नहीं होती है।

उदाहरण - बटुः अन्नं भक्षयति तं जननी प्रेरयति इत्यर्थके= बटु अन्न खाता है माता प्रेरित करती है। प्रयोज्य कर्ता में कर्म संज्ञा ही हुई **'कर्मणि द्वितीया'** सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई।

(वा) **जल्पति प्रभृतीनामुपसंख्यानम्**

व्याख्या - जल्प् तथा भाष् धातु के प्रयोग में प्रयोज्य कर्ता की प्रेरणार्थक दशा में कर्म सञ्ज्ञा कर दी जाती है।

जल्पयति, भाषयति वा धर्मं **पुत्रं** देवदत्तः, **पुत्र** धर्मं जल्पाति भाषते वा तं देवदत्तः प्रेरयति इस दशा में जल्प् तथा भाष् धातु के प्रयोग में प्रयोज्य कर्ता 'पुत्र' शब्द की प्रेरणार्थक दशा में कर्म सञ्ज्ञा करके द्वितीया विभक्ति कर दी गयी।

(वा) **दृशेश्च**

व्याख्या - व्यन्त 'दृश' धातु के प्रयोग में प्रयोज्य कर्ता की प्रेरणार्थक दशा में कर्म सञ्ज्ञा हो जाती है।

उदाहरण - दर्शयति, **हरिं भक्तान्** विग्रहः - भक्ताः हरिं पश्यन्ति, तान् गुरुः प्रेरयति यहाँ दृश् धातु के प्रयोग में प्रकृत वार्तिक से प्रयोज्य कर्ता 'भक्त' शब्द की प्रेरणार्थक दशा में कर्म सञ्ज्ञा करके द्वितीया विभक्ति कर दी गई।

शङ्का - 'गति बुद्धि.........' इस सूत्र से 'दृश्' इत्यादि धातु भी ज्ञानार्थक होने के कारण कर्म संज्ञा हो जानी चाहिए, पुनः इस वार्तिक की क्या आवश्यकता ?

समाधान - "सूत्रे ज्ञान सामान्यार्थानां मेव ग्रहणं न तु तद्विशेषार्थानामित्यनेन ज्ञाप्यते। तेन स्मरति जिघ्रतीत्यादीनां न" अर्थात् 'गतिबुद्धि ....' सूत्र में 'बुद्धि' पद सामान्य ज्ञान का कथन करने वाली धातुओं का ग्रहण किया गया है न कि ईश्वर साक्षात्कार रूप विशेष ज्ञान का कथन करने वाली धातु का अतः प्रकृत वार्तिक से यह ज्ञापित होता है कि यहाँ दृश् धातु 'विशेष ज्ञान- अर्थ में प्रयुक्त है। इसलिये 'स्मारयति, घ्रापयति **देवदत्तेन'** में देवदत्त की कर्म संज्ञा नहीं हुई।

हृकोरन्यतस्याम् (पा.सू. 1/4/53)

व्याख्या - दृ तथा कृ धातु के साधारण वाक्य के कर्ता की प्रेरणार्थक दशा में विकल्प से कम्र संज्ञा हो जाती है।

उदाहरण - हारयति कारयति वा **भृत्यं भृत्येन** वा कटम् = नौकर वसे चटाई ले जाता है या बनवाता है। भृत्यः कटं हरति, भृत्य कटं करोति वा तं स्वामी प्रेरयति। यहाँ'गति बुद्धि .....' सूत्र से प्राप्ति नहीं थी इस सूत्र से वैकल्पिक कर्म संज्ञा हुई।

(वा) **अभिवादिदृशोरात्मनेपदे वेति वाच्यम्**

व्याख्या - अभि उपसर्ग पूर्वक वद् धातु तथा केवल दृश् धातु के प्रयोज्य कर्ता की णिजन्त = प्रेरणार्थक दशा में आत्मनेपद के रूप में धातु के प्रयोग की स्थिति में विकल्प से कर्मसञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - अभिवादयते, दर्शयते देवं **भक्त भक्तेन** = भक्त से पूजन करवाता है। यहाँ पर विकल्प से कर्म संज्ञा हुई अतः 'कर्माणि द्वितीया' सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई पक्ष तृतीया विभक्ति हुई।

अधिशीङ्स्थासां कर्म (पा.सू. 1.4.46)

व्याख्या - 'अधि' उपसर्गपूर्वक शीङ् (शयन) स्था (रूकना) तथा आस (बैठना) धातु के आधार वाचक शब्द की कर्म सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - अधिशेते, अधितिष्ठति अध्यास्ते वा वैकुण्ठं हरिः = बैकुण्ठ में श्रीहरि रहते हैं।

अभिनिविशश्च (पा.सू. 1.4.47)

व्याख्या - अभि, नि इन दोनों ही उपसर्गों से युक्त विश् धातु के आधार की कर्म सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - अभिनिविशते सन्मार्गम् - यहाँ अभिनिसङ्घातपूर्वक विश धातु के आधार 'सन्मार्ग' शब्द की प्रकृत सूत्र से कर्म सञ्ज्ञा करके द्वितीया विभक्ति कर दी गई।

उपान्वध्याङ्वसः (पा.सू. 1.4.48)

व्याख्या - उप अनु अधि तथा आङ् उपसर्ग पूर्वक 'वस्' धातु के आधार वाचक शब्द की कर्म सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - उपवसति अनुवसति अधिवसति आवसति वा **वैकुण्ठं हरिः** (हरि वैकुण्ठ में रहते हैं) यहाँ भ्वादिगण की वस् धातु ही इष्ट है। वस् धातु के आधार वाचक शब्द 'वैकुण्ठ' की कर्मसञ्ज्ञा करके द्वितीया विभक्ति कर दी गयी है।

(वा) **अभुक्त्यर्थस्य न**

व्याख्या - आभुक्ति अर्थात् 'भोजनाभाव' अर्थ वाचक उप-वस् धातु के आधार की कर्म सञ्ज्ञा नहीं होती है। **उदाहरण - वने** उपवसति। यहाँ 'उप' उपसर्ग पूर्वक वस् धातु का आधार 'वन' है जिसमें भोजनाभाव अर्थ प्रकट होता है अतः आधार वाचक 'वन' शब्द की पूर्वसूत्र से प्राप्त कर्म सञ्ज्ञा का प्रकृत वार्तिक से निषेध होने पर सप्तमी विभक्ति हुई।

(वा.) **उभसर्वतसोः कार्याधिगुपर्यादिषु त्रिषु।**
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते॥

व्याख्या - तसिल् प्रत्ययान्त उभ (उभय) तथा सर्व शब्द के योग में द्वितीया होती है, इसी प्रकार धिक् उपर्युपरि, अधि-अधि अधः आदि आम्रेडित सञ्जक (कृत द्विर्वचन) शब्द के योग में द्वितीया हाती है तथा प्रयुक्त शब्दों के अन्वाखयान के लिए शिष्टजन के द्वारा अन्यत्र भी द्वितीया विभक्ति का प्रयोग किया हुआ दिखाई पड़ता है।

धातव्य है कि यह उपपद विभक्ति है जिसका अर्थ सम्बन्ध है यहाँ सम्बन्ध में षष्ठी की प्राप्ति थी किन्तु प्रस्तुत वार्तिक से द्वितीया हुई।

उदाहरण - उभयतः **कृष्णं** गोपाः **= कृष्ण** के दोनों ओर खाले हैं।
सर्वतः **कृष्णं** गोपाः = कृष्ण के दोनों ओर खाले हैं।
धिक् कृष्णाभक्तम् = कृष्ण की भक्ति से रहित व्यक्ति को धिक्कार है।
उपरि उपरि **लोकं** हरिः = लोक के ऊपर (समीप) हरि है।
अध्यधि **लोकं** हरिः = लोक के समीप हरि है।
अधोऽधो **लोकं** हरिः = लोक के नीचे समीप हरि है।

प्रस्तुत उदाहरण में द्वितीया विभक्ति हुई।

(वा) **अभिमतः परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि।**

व्याख्या - अभितः (दोनों ओर) परितः (चारों ओर) समया, निकषा (समीप) हा (दुःखवाचक) तथा प्रति के योग में भी द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - अभितः **कृष्णम्,** परितः **कृष्णम्,** ग्रामं समयानिकषा लङ्काम्, हा **कृष्णाभक्तम्,** बुभुक्षितं न प्रतिभाति किञ्चित्।

इन सभी उदाहरण वाक्यों में अभिः परितः आदि अव्ययों के योग में द्वितीया विभक्ति कर दी गयी है।

अन्तराऽन्तरेण युक्ते (पा.सू. 2/3/4)

व्याख्या - अन्तरा तथा अन्तरेण के योग में द्वितीया विभक्ति होती है। यहाँ पर अन्तरा, अन्तरेण अव्यय है। अन्तरा त्वां मां हरिः (तुम्हारे और मेरे बीच में साक्षी रूप हरि है) अन्तरेण हरिं न सुखम् (प्राणिमात्र को हरिदर्शन के बिना सुख नहीं है।)

द्वितीया विभक्ति विधायक सूत्र

व्याख्या - अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। अभिहित अर्थात् उक्त होने पर प्रथमा विभक्ति ही होती है।

उदाहरण - हरिं भजति - हरि को भजता है। यहाँ पर **भजति** क्रिया में ति (लकार) कर्तृवाच्य में हुआ है अतः कर्म अनुक्त है इसलिये (हरिं) कर्मं में द्वितीया विभक्ति है।

अभिधान तिङ् कृत् तद्धित समास में प्रायः देखा जाता है।

कर्मप्रवचनीय विधायक सूत्र

कर्मप्रवचनीयाः (पा.सू.) 1/4/83

व्याख्या - यह अधिकार सूत्र है। विषय बाहुल्य की दृष्टि से यहाँ बहुवचन का प्रयोग किया गया है। महासञ्ज्ञा के कारण इसे 'अन्वर्थ सञ्ज्ञा' भी कहा गया है। कर्ता कर्म आदि का कथन करने वाला होने से यहाँ कर्म शब्द क्रियापरक है - करोति कर्तृकर्मादिव्यपदेशान् अत कर्मशब्दः क्रियापरः। सूत्रकार पाणिनि तथा उनसे उत्तरवर्ती वैयाकरणों ने उपसर्गों के समान ही निपातों के एक अन्य वर्ग को 'कर्मप्रवचनीय' नाम दिया हैं

अनुर्लक्षणे (पा.सू. 1/4/84)

व्याख्या - क्रियाकारक के परस्पर लक्ष्यलक्षण भाव को प्रकट करने वाले 'अनु' की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है। यह सञ्ज्ञा गति तथा उपसर्ग दोनों ही संञ्ज्ञाओं की बाधिका है।

कर्मप्रवचनीय युक्ते द्वितीया (पा.सू. 2/3/8)

व्याख्या - कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा का योग होने पर द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - पर्जन्यो जपमनु प्रावर्षत् (जप के अनन्तर वृष्टि हुई)

यहाँ पर रूप लक्षण के दिखाई पड़ने पर 'अनुर्लक्षणे' सूत्र से 'अनु' की कर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञा करके प्रकृत सूत्र से 'जप' में द्वितीया विभक्ति की गयी है।

तृतीयार्थे (पा. 1/4/85)

व्याख्या - तृतीया विभक्ति के अर्थ प्रकट होने पर 'अनु' की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - नदीमन्ववसिता सेना : (नदी से सम्बद्ध सेना)

यहाँ तृतीया विभक्ति का अर्थ द्योतित होने से प्राप्त षष्ठी को बाधकर प्रकृत सूत्र से अनु की कर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञा करके उसके योग में 'नदी' शब्द में द्वितीया विभक्ति की गयी है।

हीने (पा.सू. 1/4/86)

व्याख्या - हीन अर्थ द्योतित होने पर अनु कर्मप्रवचनीय संज्ञक होगा।

उदाहरण - अनु हरिं सुराः यहाँ हरि की अपेक्षा सुरवर्ग के हीन दिखाई पड़ने पर अनु की कर्म प्रवचनीय सञा करके उत्कृष्टता के वाचक हरि शब्द से द्वितीया विभक्ति की गयी है।

उपोधिके च (पा.सू. 1/4/87)

व्याख्या - अधिक तथा हीन अर्थ प्रकट होने पर अव्यय कर्म प्रवचनीय संज्ञक होगा।

उदारहण - यहाँ अधिक शब्द का अर्थ 'अतिशय' तथा हीन का अर्थ अनुत्कृष्ट है।

उदाहरण - उप हरिं सुरा (सुर वर्ग हरि से उपकृष्ट है) यहाँ प्रकृत सूत्र से उप की कर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञा करके 'कर्म प्रवचनीरायुक्त द्वितीया' सूत्र से हरि शब्द में द्वितीया विभक्ति हुई।

लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः (पा.सू. 1/4/90)

व्याख्या - लक्षण, इत्थम्भूताखयान, भाग तथा वीरसा के अर्थ में प्रति परि तथा अनु की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण –

(1) लक्षण - चिह्न, **वृक्षं** प्रति परि अनु वा विद्योतते विद्युत् (वृक्ष की ओर बिजली चमकती है) यहाँ प्रति, परि, अनु की क्रमशः कर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञा होने के कारण द्वितीया विभक्ति हुई।

(2) इत्थम्भूताख्यान - किञ्चित् प्रकारं प्राप्तः स इत्थम्भूतः। स आख्यायते अनेन इति = प्रकार विशेष का कथन। यथा - भक्तो **विष्णुं** प्रति परि अनु वा - यहाँ भक्त होना ही प्रकार विशेष का कथन है अर्थात् भक्त विष्णु भक्ति रूप विशेष स्वरूप को प्राप्त होता है।

(3) भाग - लक्ष्मीः **हरिं** प्रति परि अनु वा (लक्ष्मी हरि की अंश है) यहाँ लक्ष्मी रूप भाग का हरि के साथ स्वस्वामिभाव सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध प्रति आदि के द्वारा द्योत्य है अतः कर्म प्रवचनीय संज्ञा हुई तथा द्वितीया विभक्ति का विधान किया गया ।

(4) वीरसा = सभी के साथ सम्बद्ध होने की इच्छा, **वृक्षं वृक्षं** प्रति वृक्ष में परि अनु वा सिञ्चति प्रकृत सूत्र से कर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञा होने से 'कर्म प्रवचनीये युक्ते द्वितीया' सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई।

अभिरभागे (पा.सू. 1-4-91)

व्याख्या - लक्षणः इत्यम्भूताख्यान तथा वीप्सा इन तीनों अर्थ योग में 'अभि' की कर्म प्रवचनीय संज्ञा हाती है।

उदाहरण -

1- **लक्षण -** हरिमभि वर्तत भक्तः भक्त हरि में संलग्न है। यहाँ लक्ष्य लक्षण भाव का ज्ञान होने से 'अभि' की की कर्म प्रवचनीय संज्ञा करके हरि शब्द से द्वितीया विभक्ति की गयी।

2- **वीप्सा -** देवं देवमभिसिञ्चति = प्रत्येक देवता का अभिसिञ्चन करता है।

प्रत्युहादरण

सूत्र में अभागे = भाग को छोड़कर यह क्यों कहा गया ? यदि भाग अर्थ में भी 'अभि' की कर्मप्रवचनीय सञ्चा होती तो **ममाऽभिष्यात्** इस प्रयोग में **मम** के स्थान में द्वतीयान्त माम् प्रयोग होगा तथा जो कि इष्टकर नहीं है। (यदत्रममाभिष्यात्तद्दीयताम् = जो मेरा अंश है उसे दीजिए।)

अधिपरी अनर्थकौ (पा.सू. 1-4-113)

व्याख्या - अनर्थक अधि तथा परि की कर्म प्रचचनीय सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - कुतः अध्यागच्दति (कहाँ से आ रहे हैं)

कुतः पर्यागच्छति (कहाँ से आ रहे हैं)

यहाँ अधि तथा परि के साथ गम् धातु का आगमन अर्थ ही है फलतः ये दोनों अनर्थक है। अतः कर्म प्रवचनीय संज्ञा हुई। कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से 'गति' सञ्ज्ञा का बोध हो गया गतिर्गतौ सूत्र से अनुदात्तस्वर नहीं हुआ, यही इसका फल है।

सुः पूजायाम्(पा.सू. 1-4-94)

व्याख्या - पूजा (प्रशंसा) के द्योतक 'सु' की प्रकृत सूत्र से कर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञा की गयी है। फलतः 'उपसर्गात् सुनोति....' सूत्र से षत्व नहीं हुआ।

प्रत्युदाहरण - पूजायां किम् ? क्योंकि पूजा अर्थात् प्रशंसा अर्थ में ही सु की कर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है। अतः 'सुषिक्त किं तवात्र' इस प्रत्युदाहरण में पूजा से भिन्न क्षेप अर्थात् निन्दा अर्थ का बोध होने से 'सु' की कर्म प्रचचनीय सञ न होकर उपसर्ग सञ्ज्ञा हो गयी है।

अतिरतिक्रमणे च (पा.सू. 1/4/95)

व्याख्या -अतिक्रमण (बढ़कर) तथा पजू (प्रशंसा) अर्थ के द्योतक 'अति' की कर्म प्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - अति **देवान्** कृष्णः (कृष्ण देवों से अधिक अथवा देवों से भी पूज्य है) यहाँ दोनों ही अर्थों में एक ही उदाहरण है। फलतः 'अति' की कर्मप्रवचनीय सत्र करके उसके योग में कृष्ण शब्द में द्वितीया विभक्ति हो गयी है।

अपिः पदार्थसम्भावनाऽन्ववसर्गगर्हासमुच्चयेषु (पा.सू. 1/4/96)

व्याख्या - पदार्थ सम्भावना, अन्ववसर्ग, गर्हा तथा समुच्चय अर्थ के द्योतक 'अपि' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा होती है।

उदाहरण -

1- **सर्पिषोऽपि स्यात् -** भोजन काल में यह उक्ति घी भी हाता है तो यहाँ अपि शब्द घी बिन्दु का द्योतक है। अतः प्रकृत सूत्र से अपि की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई। फलतः स्यात् के सकार 'उपसर्गप्रादुर्भ्याम्' सूत्र से षकार नहीं हुआ।

2- **अपि स्तुयाद विष्णुम्** (क्या विष्णु की स्तुति कर सकेगा ?) यहाँ मन तथा वाणी से परे विष्णु की स्तुति करने वाले की शक्ति का उत्कर्ष का बोधन हो रहा है।

3- **अपि स्तुहि =** (स्वेच्छा से) स्तुति करो या न करो। इच्छानुकूल कार्य करने हेतु निर्देश देना अन्ववसर्ग कहलाता है। कर्मप्रवचनीय संज्ञा होने से स्तुहि के सकार मूर्ध्न्य नहीं हुआ।

4- **धिग्देवदत्तम्, अपि स्तुयाद् वृषलम्** (देवदत्त को धिक्कार है जो शूद्र की स्तुति करता है।) यहाँ अस्तुत्य की स्तुति करने से स्तोता की निन्दा प्रकट हो रही है। अतः गर्हा (निन्दा) अर्थ में 'अपि' की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा के द्वारा उपसर्ग सञ्ज्ञा का बाध हो जाने से 'स्तुयाद्' के सकार को षकार नहीं हुआ है।

5- **अपि सिञ्च अपि स्तुति -** (सेचन भी करो और स्तुति भी) यहाँ अपि की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने से सकार को षकार नहीं होता है।

कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे (पा.सू. 2/3/5)

व्याख्या - कालवाचक तथा मासवाचक शब्द में अत्यन्त अर्थात् निरन्तर संयोग दिखाई पड़ने पर द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - कालवचाक गुणात्यन्तसंयोग- मासं कल्याणी (मासपर्यन्त सुख की प्राप्ति अर्थात् दुःख का अत्यन्ताभाव।)

कालवाचक क्रियात्यन्तसंयोगे- मासमधीते (विराम रहित मार्सपर्यन्त अध्ययन करता है।)

कालवाचक द्रव्यात्यन्त संयोग - मासं गुडधानाः (मासपर्यन्त निरन्तर भोजन सम्बन्धित गुडमिश्रित धान)

इन उदाहरण वाक्यों में कालवाचक शब्द का क्रमशः गुणः क्रिया तथा द्रव्य से अत्यन्त संयोग होने के कारण द्वितीया विभक्ति की गयी है।

अध्ववाचक गुणात्यन्तसंयोग- क्रोशं कुटिला नदी (नदी क्रोश पर्यन्त टेढ़ी)

अध्ववाचक क्रियात्यन्त संयोग- क्रोशमधीते (क्रोशपर्यन्त अध्ययन)

अध्ववाचक द्रव्यात्यन्तसंयोग - क्रोशं गिरिः (क्रोशपर्यन्त पर्वत) इन वाक्यों में भी अध्ववाचक शब्द क्रमशः गुण, क्रिया तथा द्रव्य का अत्यन्त संयोग दिखाई पड़ने से प्रकृत सूत्र से द्वितीया विभक्ति हो गयी।

प्रत्युदाहरण - निरन्तर संयोग होने पर ही द्वितीया होती है-

1- मासस्य द्विरधीते (माह में दो बार पढ़ता है)

2- क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः (कोश भर में एक तरफ पर्वत है) इन दोनों प्रत्युदाहरणों में अत्यन्त संयोग का अभाव होने से प्रकृत सूत्र से द्वितीया विभक्ति न होकर सम्बन्ध अर्थ में षष्ठी हुई।

22.4 तृतीया विभक्ति

द्वितीया विभक्ति के अनन्तर तृतीया विभक्ति का क्रम है। तृतीया विभक्ति अनुक्त कर्ता तथा अनुक्तकरण में होती है। उप पद में तृतीया विभक्ति का विधान है।

22.4.1 कर्तृ संज्ञा विधायक सूत्र

स्वतन्त्रः कर्ता (पा.सू. 1/4/54)

व्याख्या - किसी क्रिया के निष्पादन में स्वतन्त्र (प्रधान) कहे जाने वाले कारक की कर्ता संज्ञा होती है।

कर्म कारण आदि कारक क्रिया की उत्पत्ति में स्वतन्त्र न होकर कर्त्ता के द्वारा की जाने वाली क्रिया के अधीन रहते हैं। जैसे- **चैत्रः** तण्डुलान् पचति' यहाँ 'चैत्र' फूत्कार आदि व्यापार करता है तदनन्तर तण्डुल तादात्म्य सम्बन्ध से विक्लित्ति (अवयवों के शिक्षिल होने वाली क्रिया) के प्रति कारण बनता है। इस प्रकार "तण्डुल" रूप कर्म में होने वाली विभक्ति रूप क्रिया की परतन्त्रता स्पष्ट है। इसी प्रकार करण आदि कारक है।

22.4.2 करण सञ्ज्ञा विधायक सूत्र

व्याख्या - किसी क्रिया की सिद्धि में जो अत्यधिक सहायक होता है उसकी करण सञ्ज्ञा होती है।

यहाँ साधकतम का अर्थ है - प्रकृष्टोकारकम्। जिस किसी के द्वारा किये जाने वाले व्यापार के अनन्तर क्रिया की सिद्धि होती है। वही उस क्रिया में सबसे अधिक सहायक माना जाता है। अतः उसकी करण सञ्ज्ञा होती है।

तमब्ग्रहणं किम् - गङ्गायां घोषः

कारके' सूत्र के अधिकार में 'क्रियते अनेन' इस व्युत्पत्ति में 'करणाधिकरणयोश्च' सूत्र से करण में ल्युट्प्रत्यय से 'करण' शब्द निष्पन्न होता है। 'करण' इस महासञ्ज्ञा के द्वारा क्रिया सिद्धि में साधक की करण सञ्ज्ञा होती है। यह अर्थ निष्पन्न होता है। पुनः सूत्र में 'साधक' पद के उपदेश द्वारा 'अतिशय साधक' (प्रकृष्ट उपकारक) अर्थ बोध हो जाने पर 'तमप्' ग्रहण की आवश्यकता नहीं है, अतः व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि कारकाधिकार में शब्दाधिक्य अर्थाधिक्य का ग्रहण नहीं होता है फलतः 'गङ्गायां घोषः' वाक्यस्थ गङ्गापद में अधिकरण सञ्ज्ञा करके सप्तमी विभक्ति हो जाती है। अन्यथा सर्वायवव्याप्त की अधिकरण होती है तो गङ्गायां घोषः में अधिकरण संज्ञा ही नहीं हो पाती है।

22.4.3 तृतीया विभक्ति विधायक सूत्र

कर्तृकरणयोस्तृतीया (पा.सू. 2/3/18)

व्याख्या - अनभिहित (अनुक्त) कर्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - रामेण बाणेन हतो बाली - राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया।

यह कर्म वाच्य का वाक्य है जिसमें 'राम' 'बाली की हनन क्रिया में स्वतन्त्र - प्रधान है अतः उसकी 'स्वतन्त्रः कर्ता' सूत्र से कर्तृ सञ्ज्ञा हुई।

इसी प्रकार उस हनन क्रिया में धनुष आदि के सहायक होने पर भी अत्यधिक सहायक 'बाण' है। अतः उसकी 'साधकतमं करणम्' से करण सञ्ज्ञा हुई है। कर्ता के अनुक्त होने से तथा करण में 'कर्तृकरणयोस्तृतीया' सूत्र से तृतीया विभक्ति कर दी गयी है।

(वा.) **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्**

व्याख्या - प्रकृत्यादिगण में पठित शब्दों से तृतीय विभक्ति की जानी चाहिए।

उदाहरण - प्रकृत्या चारु (स्वभाव से सुन्दर)

प्रायेण याज्ञिकः (प्रायः यज्ञ करने वाला)

गोत्रेण गार्ग्यः (गार्ग्य गोत्र वाला)

समेनैति, विषमेणैति (समान चलता है, विषम चलता है)

द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति (द्विद्रोण से अभिन्न धान्य)

सुखेन दुःखेन वा याति (सुख अथवा दुःख चलायमान है)

उपर्युक्त उदाहरणों में सम्बन्ध होने के कारण षष्ठी विभक्ति की प्राप्ति है किन्तु प्रकृत वार्तिक से तृतीया विभक्ति हुई है।

दिवः कर्म च (पा.सू. 1/4/43)

व्याख्या - दिव् धातु के प्रयोग में साधकतम कारक की कर्म सञ्चा तथा करण सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति - पाँसों से खेलता है। क्रमशः अक्ष की कर्म अथवा करण संज्ञा होने से द्वितीया तथा तृतीया विभक्ति हुई।

अपवर्गे तृतीया (पा.सू. 2/3/6)

व्याख्या - अपवर्ग अर्थात् फलप्राप्ति अर्थ का ज्ञान होने पर कालवाचक तथा मार्गवाचक शब्द के नैरन्तर्य में तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - अह्ना क्रोशेन वाऽनुवाकोऽधीतः = दिनभर में अथवा क्रोश भर चल कर अनुवाक (ब्राह्मण ग्रन्थ का एक प्रभाग) पढ़ लिया।

यहाँ काल वाचक अथवा मार्गवाचक का अत्यन्त संयोग है। अतः तृतीया विभक्ति हुई।

प्रत्युदाहरण - सूत्र में अपवर्गे पद क्यों दिया गया ? यदि अपवर्गे पद नहीं देते तो **मासमधीतो नायतः** इस प्रयोग में तृतीया विभक्ति होने लगती, यहाँ पर अत्यन्त संयोग का अभाव है।

सहयुक्तेऽप्रधाने (पा.सू. 2/3/19)

व्याख्या - सह (साथ) तथा उसके अर्थ के वाचक साकम्, सार्धम्, समम् अव्ययवों के योग में अप्रधान अर्थ वाचक शब्द में तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - पुत्रेण सह आगतः पिता - यहाँ आगमन क्रिया में पिता साक्षात् सम्बद्ध है न कि पुत्र। अप्रधान पुत्र में तृतीया विभक्ति हुई।

येनाऽङ्गविकारः (पा.सू. 2/3/20)

व्याख्या - शरीर के जिस किसी अङ्ग में विकार होने के कारण उस अङ्गी शरीर का विकार लक्षित होता है उस अङ्ग वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - अक्ष्णा काणः (आँखों से काना)

यहाँ अंग वाचक 'अक्षि' में काणत्व दोष के होने से इस अवयव धर्म के समुदाय में आरोपित कर लेने से शरीर एवं उससे युक्त आत्मा के प्रति उसका व्यवहार रुढ़ हो गया है।

प्रत्युदाहरण - अङ्ग विकार क्यों कहा गया ?

समाधान - अङ्ग तथा अङ्गी का साथ होना आवश्यक है अन्यथा **अक्षिकाणमस्य** इस प्रयोग में भी अक्षि की तृतीया विभक्ति होने लगती है। यहाँ काणत्व विशिष्ट अङ्ग है न कि अङ्गी।

इत्थम्भूतलक्षणे (पा.सू. 2/3/21)

व्याख्या - इत्थम्भूत अर्थात् 'इस प्रकार का हो गया' यह अर्थ जिससे लक्षित होता है उस लक्षण वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - जटाभिस्तापसः (जटाओं से तपस्वी प्रतीत होता है) यहाँ जटा से तपस्वी का ज्ञान हो रहा है, अतः जटा में तृतीया विभक्ति हुई।

सञ्ज्ञोऽन्यतरस्यां कर्मणि (2/3/22)

व्याख्या - सम् वा धातु प्रयोग में उसके कर्म में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - पित्रा पितरं वा सञ्जानीते (पिता को अच्छी तरह से जानता है) यहाँ पितृ शब्द कर्म है, विकल्प से तृतीया विभक्ति हुई है पक्ष में द्वितीया होती है।

हेतौ (पा.सू. 2/3/23)

व्याख्या - हेतु अर्थात् करण अर्थ वाचक शब्द से तृतीया विभक्ति होती है।

सूत्रस्थ हेतु शब्दसे लौकिक हेतु कारण अर्थ का ग्रहण किया गया है न कि 'तत्प्रयोजको हेतुश्च' सूत्र में पठित कृत्रिम संज्ञापरक हेतु शब्द।

हेतु = द्रव्य गुण एवं क्रिया का जनक ही हेतु है।

करण = क्रिया मात्र का विषय तथा व्यापार युक्त करण है।

उदाहरण

1- द्रव्य का - दण्डेन घटः घट द्रव्य के प्रति दण्ड हेतु है। अतः तृतीया विभक्ति हुई।

2- क्रिया का - पुण्येन दृष्टो हरिः - 'पुण्य' हरि दर्शन रूप क्रिया का हेतु है अतः उसमें तृतीया हुई है।

3- गुण का - **पुण्येन** ब्रह्मवर्चः यहाँ ब्रह्मवर्चस् गुण है। जिसका कारण पुण्य है।

फलमपीह हेतुः - लौकिक फल भी हेतु है। अतः अध्ययनेन वसति यहाँ फल अध्ययन है अतः तृतीया विभक्ति हुई।

गम्यमानापि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका -

जिस पर का शब्दतः श्रवण नहीं होता है उसे अध्याहार आदि के द्वारा ग्रहण कर लिये जाने पर गम्यमान कहा जाता है।

उदाहरण - अलं **श्रमेण** यहाँ अलं निषेधार्थक है। (यह कार्य श्रम से सिद्ध नहीं होने वाला है) इस अर्थ में साधन क्रिया के प्रति श्रम करण है अतः श्रम में तृतीया विभक्ति हुई।

शतेन-शतेन वत्सान् पाययति पयः - यहाँ वीप्सा अर्थ में 'शत' शब्द में द्वित्व किया गया है। (एक-एक सौ की संख्या में बाँटकर बछड़ों को दूध पिलाता है) यहाँ शत संख्या के परिच्छेदन क्रिया के प्रति करण है अतः उसमें तृतीया विभक्ति हुई।

(वा.) **अशिष्टव्यवहारे दाणप्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया**

व्याख्या - अशिष्ट व्यवहार अर्थ में 'दाण्' देने के प्रयोग में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - दास्या संयच्छते कामुकः (कामी पुरुष दासी को धन देता है) 'दाण्' धातु के योग में चतुर्थी के अर्थ में तृतीया विभक्ति हुई। धर्मतः कथन में चतुर्थी ही रहती है - **भार्यायै** संयच्छति। (पत्नी के लिए धन देता है)

22.5 चतुर्थी विभक्ति

चतुर्थी विभक्ति का कारक प्रायः सम्प्रदान है। यद्यपि नमः स्वस्ति इत्यादि के योग में चतुर्थी का विधान उपपद विभक्ति है तथापि प्रायः दानार्थक धातु में चतुर्थी विभक्ति देखी जाती है।

22.5.1 सम्प्रदान सञ्ज्ञा विधायक सूत्र

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् (पा.सू. 1/4/32)

व्याख्या - दान क्रिया के कर्म द्वारा कर्ता जिसे चाहता है उसकी सम्प्रदानसञ्ज्ञा होती है।

22.5.2 चतुर्थी विभक्ति विधायक सूत्र

चतुर्थी सम्प्रदाने (पा.सू. 2/3/13)

व्याख्या - सम्प्रदान अर्थ बोधक प्रातिपदिक से चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण - विप्राय गां ददाति = विप्र को गाय देता है।

यहाँ कर्ता (नृप) के द्वारा की जाने वाली दान क्रिया का कर्म 'गो' है तथा गो के द्वारा नृप को विप्र इष्ट है अतः 'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा होने पर चतुर्थी विभक्ति हुई।

(वा.) **क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्**

व्याख्या - यदि कर्ता किसी क्रिया के द्वारा किसी को चाहता है तो उसकी भी सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है। इस वार्तिक के अनुसार अकर्मक धातु के योग में भी सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - पत्ये शेते (पतिमुद्दिश्य शेते इत्यर्थः)

यहाँ अकर्मक शीङ् धातु का प्रयोग होने से कर्ता (पत्नी) के द्वारा पति को उद्देश्य करके शयन किया जाने से प्रकृत वार्तिक के द्वारा पति शब्द की सम्प्रदान संज्ञा करके उसमें चतुर्थी विभक्ति की गयी।

(वा.) **यजेः कर्मणः करण सञ्ज्ञा सम्प्रदानस्य च कर्मसञ्ज्ञा**

व्याख्या - यज् धातु का देवपूजा, सङ्गतिकरण तथा दान अर्थ में प्रयोग होता है। इस प्रकार से सामान्य रूप से कर्मकारक के स्थान पर करण कारक तथा सम्प्रदान के स्थान पर कर्म का विधान कर दिया जाता है।

उदाहरण - पशुनां रुद्रंयजते अर्थात् पशुं रुद्राय यजते = ददाति इस स्थिति में यञ् धातु दान अर्थ में प्रयुक्त है अतः कर्म सञ्ज्ञक 'पशु' शब्द में करण सञ्ज्ञा करके तृतीया तथा सम्प्रदानसञ्ज्ञक 'रुद्र' शब्द में प्राप्त चतुर्थी को बाधकर कर्म सञ्ज्ञा एवं द्वितीया विभक्ति का विधान किया गया है।

रुच्यर्थानां प्रीयमाणः (पा.सू. 1/4/33)

व्याख्या - रुचि (अभिप्रीति) अर्थ के वाचक धातुओं के प्रयोग में प्रीयमाण शब्द की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - **हरये** रोचते भक्तिः = हरि को भक्ति अच्छी लगती है।

यहाँ रुच् धातु के योग में हरि की सम्प्रदान सञ्ज्ञा हुई तथा चतुर्थी विभक्ति हुई।

श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः (पा.सू. 1/4/34)

व्याख्या - श्लाघ्, ह्नुङ्, स्था, शप् धातु के प्रयोग में बोध्यमान शब्द की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - गोपी स्मरात् **कृष्णाय** श्लाघते, ह्नुते, तिष्ठते तथा शपते वा - गोपी श्लाघन, अपनयन, प्रतीक्षा तथा उपालम्भ के द्वारा कृष्ण के प्रति अपना भाव प्रकट करती है अर्थात् काम भाव से कृष्ण की प्रशंसा, पत्नी आदि को ध्यान में रखकर छिपे तौर पर प्रेमाभिव्यक्ति, निर्दिष्ट स्थान व समय पर न आने पर प्रतीक्षा एवं उलाहना देकर प्रेम का प्रकाशन करना इन अर्थों में ज्ञीप्स्यमान 'कृष्ण' की प्रकृत सूत्र से सम्प्रदान सञ्ज्ञा करके उसमें चतुर्थी विभक्ति कर दी गई।

प्रत्युदाहरण - ज्ञीप्स्यमानः किम् **देवदत्ताय** श्लाघते पथि - मार्ग में देवदत्त की प्रशंसा करता है। यहाँ ज्ञीप्स्यमान देवदत्त में सम्प्रदान संज्ञा होगी किन्तु पथि ज्ञीप्स्यमान नहीं है। यदि ज्ञीप्स्यमान पद नहीं देंगे तो पथि की भी सम्प्रदान संज्ञा होने लगेगी॥

धारेरुत्तमर्णः (पा.सू. 1/4/35)

व्याख्या - धारि धातु के प्रयोग में 'उत्तमर्ण' वाचक शब्द की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है। अनवस्थानार्थक धृङ् से प्रेरणार्थक णिच् प्रत्यय करने पर निष्पन्न 'धारि' क्रियापद धारण करना }णी होना अर्थ में रूढ हो गया है। ऋण देने वाला उत्तमर्ण होता है। ऋण लेने वाला अधमर्ण कहलाता है।

उदाहरण - भक्ताय धारयति मोक्षं हरिः = यहाँ भक्ति रूप ऋण देने के कारण 'भक्त उत्तमर्ण' तथा उसको ग्रहण करने वाले 'हरि' 'अधमर्ण हैं। अतः धारि धातु के प्रयोग में प्रकृत सूत्र से भक्त में सम्प्रदान संज्ञा होकर 'चतुर्थी सम्प्रदाने' से चतुर्थी विभक्ति हुई।

स्पृहेरीप्सितः (पा.सू. 1/4/36)

व्याख्या - 'स्पृहि' धातु के प्रयोग में अभिलषित पदार्थ की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - पुष्पेभ्यः स्पृहयति (पुष्पों को पसन्द करता है) पुष्प साम्प्रदानिक इच्छा। यहाँ स्पृह धातु के योग में ईप्सित पुष्प की सम्प्रदान संञ्ज्ञ हुई।

ईप्सितः किम् ? पुष्पेभ्यो वने स्पृहयति - सूत्र में ईप्सित पद का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि ईप्सितार्थ वाचक शब्द की ही सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है। अतः आधार वाचक वन शब्द की अधिकरण संज्ञा ही उचित है।

कुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः(पा.सू. 1/4/37)

व्याख्या - कुध्, द्रुह्, ईर्ष्य, असूय तथा इनके अर्थ के बोधक धातुओं के योग में जिसके प्रति कोप होता है। उस (उद्देश्य) की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - हरये कुध्यति, द्रुह्यति (हरि विषयक कोप करता है) यहाँ अकर्मक क्रुध् तथ द्रुह धातु के प्रयोग में शेषत्व विवक्षया षष्ठी की प्राप्ति है प्रकृत सूत्र सम्प्रदान सञ्ज्ञा हुई।

क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म (पा.सू. 1/4/38)

व्याख्या - जहाँ किसी उपसर्ग से सम्बद्ध क्रुध् तथा द्रुह् धातु का प्रयोग दिखाई देता है वहाँ जिसके प्रति कोप किया जाता है उसकी कर्म संज्ञा होती है।

उदाहरण - क्रूरमभि कुध्यति, क्रूरमभिद्रुह्यति = क्रूर पर क्रोध करता है, द्रोह करता है। 'क्रुधद्रहेर्ष्या सूत्र से प्राप्त सम्प्रदान संज्ञा का बधकर प्रकृत सूत्र से कर्म सञ्ज्ञा हुई। तथा'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति हुई।

राधीक्ष्योर्यस्य विप्रश्नः (पा.सू. 1/4/39)

व्याख्या - राध् तथा ईष् धातु के प्रयोग में जिसके विषय में अनेक प्रश्न किये जाते हैं उसकी सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहण - कृष्णाय राध्यति ईक्षते वा - यहाँ कृष्ण के भविष्यविषयक अनेक प्रकार के प्रश्न उपस्थित होने पर गर्गाचार्य उनके शुभाशुभ फल का पर्यालोचन करते है। अतः राध तथा ईक्ष्धातु के प्रयोग में कृष्ण शब्द में प्राप्त षष्ठी विभक्ति को बाधकर सम्प्रदान सञ्ज्ञा एवं चतुर्थी विभक्तिकी गयी।

प्रत्यङ्भ्यां श्रुवः पूर्वस्य कर्ता(पा.सू. 1/4/40)

व्याख्या - प्रति तथा आङ् उपसर्ग पूर्वक श्रु धातु के प्रयोग में पूर्व के प्रेरणा रूप क्रिया के कर्ता की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - विप्राय गां प्रतिशृणोति आशृणोति वा। प्रकृत वाक्य में प्रति तथा आ उपसर्ग के साथ श्रु धातु का योग है। (विप्र गोदान के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।) इस अर्थ में विप्र की सम्प्रदान सञ्ज्ञ हुई तथा चतुर्थी विभक्ति हुई।

अनुप्रतिगृणश्च(पा.सू. 1/4/41)

व्याख्या - अनु तथा प्रति उपसर्गपूर्वक गृ धातु के योग में (शंसन रूप) पूर्व व्यापार के कर्ता की सम्प्रदान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - होत्रेऽनुगृणाति प्रतिगृणाति वा। (होता के अध्वर्यु प्रोत्साहित करता है) यहाँ अनु तथा प्रति उपसर्ग के साथ गृ धातु का प्रयोग होने से पूर्ववाक्य के कर्ता होता (होतृ) शब्द की प्रकृत सूत्र से सम्प्रदान सञ्ज्ञा करके उसमें चतुर्थी विभक्ति हुई।

परिक्रमणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम् (पा.सू. 1/4/44)

व्याख्या - निश्चित अवधि के लिए वेतन आदि के द्वारा सेवा कार्य हेतु किसी को अपने स्वामित्व परिक्रयण रूप अर्थ में अत्यधिक सहायक कारक की विकल्प से सम्प्रदान सञ्ज्ञा की जाती है।

उदाहरण - शतेन शताय वा परिक्रीतः (भृत्यः) = सौ रुपये में सेवा कार्य पर रखा गया भृत्य। यहाँ नियत काल तक सेवा कार्य में सहाय शत है अतः विकल्प से सम्प्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी विभक्ति हुई पक्ष में करण होने से तृतीया विभक्ति हुई।

(वा.) **तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या।**

व्याख्या - उसी के कार्य के लिये 'जहाँ यह अर्थ विवक्षित होता है वहाँ उस तादर्थ्य वाचक शब्द में चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण - मुक्तये हरिं भजति = मुक्ति के लिए हरि का भजन करता है। यहाँ तादर्थ्य अर्थ होने पर चतुर्थी विभक्ति हुई।

(वा.) **क्लृपि सम्पद्यमाने च।**

व्याख्या - क्लृप् धातु के योग में उत्पद्यमान (होने की सम्भावना) अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण - भक्तिः **ज्ञानाय** कल्पते सम्प्रद्यते जायते यहाँ भक्ति से ज्ञान पैदा होता है। इस अर्थ में ज्ञान प्रादुर्भाव अथवा भक्ति और ज्ञान में प्रकृति विकृति भाव होने पर विकृतिवाचक ज्ञान शब्द में चतुर्थी विभक्ति हुई।

(वा.) **उत्पातेन ज्ञापिते च**

व्याख्या - प्राकृतिक उत्पात से किसी ज्ञापित होने अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण - वाताय कपिला विद्युत् वातस्य ज्ञापिकेत्यर्थः, यहाँ कपिला विद्युत (भूरे रंग की बिजली) प्राकृतिक उत्पात है जो महावात की सूचना देने वाली है अतः प्रकृत वार्तिक से 'वात' शब्द में चतुर्थी विभक्ति हुई है।

क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः (पा.सू. 2/3/14)

(वा.) **हितयोगे च**

व्याख्या - हित और सुख शब्द के योग में भी चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण - ब्राह्मणाय हितम् = ब्राह्मण के लिए हितकर यहाँ हित के योग में ब्राह्मण से चतुर्थी विभक्ति हुई।

व्याख्या - क्रियार्था क्रिया जिसके उप पद रूप में विद्यमान होती है उस अप्रयुज्यमान स्थानी तुमुन् प्रत्यय के कर्म में चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण

(1) **फलेभ्यो याति =** फलों के आहरण के लिए जाता है। यहाँ तुमुन्नन्त क्रियापद 'आहर्तुं' स्थानी है क्योंकि वही अप्रयुज्यमान है अतः उसके कर्म 'फल' प्रकृत सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हो गयी।

(2) **नमस्कर्मो नृसिंहाय-** इस वाक्य नमस्कार नृसिंह के लिये न होकर नृसिंह को अनुकूल करनके के लिए है। अतः अप्रयुज्यमान तुमुन्नन्त स्थानी के कर्म'नृसिंह' शब्द में चतुर्थी कर दी गई।

तुमर्थाच्च भाववचनात् (पा.सू. 2/3/15)

व्याख्या - तुमुन् प्रत्यय एवं उसके सृदश अर्थ के बोधक भाव प्रत्यान्त शब्दों से भी चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

उदाहरण - यागाय याति, यहाँ प्रधान क्रिया 'याति' है। उसके उपपद के रूप में तुमुन्प्रत्यय के अर्थ को कहरने वाला घञ् प्रत्ययान्त 'याग' शब्द है जो कि 'यष्टुम्' क्रिया के स्थान में प्रयुक्त है अतः प्रकृत सूत्र से याग में चतुर्थी विभक्ति हुई।

नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलं वषड्योगाच्च (पा.सू. 2/3/16)

व्याख्या - नमः (नमस्कार) स्वस्ति (कल्याण) स्वाहा (देवतोद्देश्यक हवि अर्पण) स्वधा (पित्युद्देश्यक पिण्डदान) अलं (पर्याप्त वषट् (देव हविर्दान) के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण

(1) **हरये नमः =** हरि को उद्देश्य करके नमस्कार का विधान किया गया है। यहाँ 'नम' पद क्रियान्वित न होने से कारकत्व नहीं है, अतः नमः पद के योग में चतुर्थी विभक्ति हुई।

(2) **प्रजाभ्यः** स्वस्ति - प्रजा का कल्याण हो यहाँ स्वस्तिपद के योग में चतुर्थी विभक्ति हुई।

(3) **अग्नये** स्वाहा - अग्नि देवता को उद्देश्य करके अर्पित की गयी हवि से सम्बन्धित मन्त्र। यहाँ स्वहा के योग में अग्नि में चतुर्थी विभक्ति हुई।

(4) **पितृभ्यः** स्वधा - पितरों के उद्देश्य करके विधिपूर्वक प्रदत्त पिण्डदान हेतु स्वधा शब्द का प्रयोग। यहाँ स्वधाय के योग में चतुर्थी विभक्ति हुई।

(5) प्रभ्वादियोगे - प्रभुः समर्थः आदि के योग में प्रकृट सूत्र द्वारा चतुर्थी विभक्ति होती ही है। इसके साथ इनके योग में षष्ठी विभक्ति भी होती है। इसमं **'तस्मै** प्रभवति' 'स एषां ग्रामणीः' ये पाणिनीय सूत्र प्रमाण है। अतः माघ के प्रयोग षष्ठी देखी जाती है - प्रभुर्बुभूषुर्भुवन **त्रयस्य**

(6) **वषडिन्द्राय -** परम ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र देव की प्रीति के लिए यजमान द्वारा अर्पित हवि। वषड् के योग में इन्द्र से चतुर्थी विभक्ति हुई।

चकारः पुनर्विधानार्थः - प्रकृत सूत्र में पद का प्रयोग पुनः चतुर्थी विभक्ति के विधान के लिये है जिसमें शुभाशंसन रूप आशीर्वाद अर्थ विवक्षा में 'चतुर्थी चाशिष्या ......' सूत्र से प्राप्त षष्ठी को बाध कर चतुर्थी विभक्ति ही होती है।

(7) **स्वस्ति** गोभ्यो भूयात् - गायों का कल्याण यहाँ आशीर्वादार्थक स्वसित शब्द के योग में षष्ठी न होकर चतुर्थी ही हुई।

मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु (पा.सू. 2/3/17)

व्याख्या - तिरस्कार अर्थ के प्रकाशन में प्रयुक्त मन् धातु के कर्म (गौण) में प्राणिवाचक आदि न होने की स्थिति में विकल्प से चतुर्थी विभक्ति होती है।

उदाहरण - न त्वां **तृणं** मन्ये **तृणाय** वा (मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता) **ध्यातव्य** है कि यहाँ दिवादिगण की ही मन् धातु विवक्षित है।

अप्राणिष्वित्यपनीय नौकाकान्नशुकशृगालवर्जेष्वितिवाच्यम्।

व्याख्या - 'मन्यकर्मण्यनादरे....' सूत्र में पठित 'अप्राणिषु' पद को छोड़कर उसके स्थान पर नौ (नाव) काक, अन्न, शुक, शृगाल का पाठ करना चाहिए।

उदाहरण - न त्वां नावम्, अन्नं वा मन्ये।

(मैं तुम्हे नाव बया अन्न भी नहीं मानता) यहाँ पर अप्राणी होने पर भी चतुर्थी नहीं हुई। **न त्वां शुने मन्ये** (मैं तुम्हें कुत्ता भी नहीं समझता) यहाँ पर प्राणी होने पर भी चतुर्थी हो गयी।

गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि (पा.सू. 2/3/12)

व्याख्या - गति (गमन) अर्थ का कथन करने वाली धातुओं का योग होने पर उसके कर्म में द्वितीया एवं चतुर्थी विभक्ति होती है। यदि व कर्म मार्गवाचक नं हो किन्तु शारीरिक चेष्टा अर्थ की प्रतीति हो रही हो तो।

उदाहरण - ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति (गाँव को जाता हूँ) प्रस्तुत स्थल में शारीरिक चेष्टा प्रतीति हो रही है। अतः द्वितीया एवं चतुर्थी विभक्ति हुई।

चेष्टायाम् किम् - मनसा हरिं व्रजति मन से हरि के पास जाता है। यहाँ पर शारीरिक चेष्टा है अतः चतुर्थी नहीं हुई।

अनध्वनि इति किम् - पन्थानं गच्छति = राह चलता है। यहाँ अध्वा = रास्ता अर्थ है अतः चतुर्थी नहीं हुई।

मन्त्राधिष्ठिते - गमन कर्ता के मार्ग अधिष्ठित अर्थात् स्वयं इष्ट मार्ग पर चलने की स्थिति में ही प्रकृत सूत्र द्वारा चतुर्थी विभक्ति का निषेध होता है। किन्तु जब वह उत्पथ अर्थात्निन्दित मार्ग को छोड़कर इष्ट मार्ग की ओर चलता है तो वहाँ मार्ग वाचक शब्द से चतुर्थी होती ही है यथा - उत्पथेन **पथे** गच्छति (अनिष्ट मार्ग से इष्ट मार्ग पर चलता है) यहाँ मार्गवाचक होने पर भी चतुर्थी विभक्ति हो गयी। इसका कारण यह है कि गमनकर्ता भ्रमवश अधिष्ठित अनिष्ट मार्ग को छोड़कर इष्ट मार्ग पर अग्रसर हुआ।

22.6 पञ्चमी विभक्ति एवं षष्ठी विभक्ति

22.6.1 पञ्चमी विभक्ति विधायक सूत्र

अपादाने पञ्चमी (पा.सू. 2/3/28)

व्याख्या - अपादान सञ्ज्ञक शब्द में पञ्चमी विभक्ति होती है।

22.6.2 अपादान सञ्ज्ञा विधायक सूत्र

ध्रुवमपायेऽपादानम् (पा.सू. 1/4/24)

व्याख्या - अपाय शब्द का अर्थ है विश्लेष, विभाग, पृथक्करण। ध्रुव निश्चित धुरि से विश्लेष होने पर अवधिभूत कारक की अपादान संज्ञा होती है। यहाँ ध्रुव बुद्धिपरिकल्पित भी होता है।

उदाहरण

(1) **ग्रामादायाति =** गाँव से आता है। यहाँ ग्राम अवधिभूत है जिससे व्यक्ति का विश्लेष स्पष्ट है अतः पूर्व सूत्र से 'ग्राम' शब्द की अपादान सञ्ज्ञा करके उसमें पञ्चमी विभक्ति हो जाती है।

(2) **धावतोऽश्वात् पतति -** 'दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है' इस वाक्य में सापेक्ष ध्रुवत्व (स्थिरता) है क्योंकि जिस समय आरोही धावन क्रिया से युक्त अश्व से उस समय आरोही और अश्व दोनों ही गतिमान रहते हैं तथापि आरोही की अपेक्षा अश्व स्थिर माना जाता है। अतः अश्व की अपादान संज्ञा होती है तथा पञ्मी विभक्ति होती है।

(वा.) **जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्**

व्याख्या - जुगुप्सार्थक विरामार्थक तथा प्रमादार्थक धातुओं के योग में जुगुप्सा आदि विषय की अपादान सञ्ज्ञा का कथन किया जाना चाहिए।

उदाहरण

(1) **पापा**ज्जुगुप्सति = पाप से अलग होता है।

(2) **पापाद्** विरमति = पाप से अलग होता है।

(3) **धर्मा**त्प्रमाद्यति = धर्म से प्रमाद करता है।

क्रमशः पाप, धर्म की अपादान संज्ञा हुई अतः पञ्चमी विभक्ति होती है।

भीत्रार्थानां भयहेतुः (पा.सू. 1/4/25)

वृत्तिः - भयार्थानां त्रणार्थानां च प्रयोगे भयहेतुरपादानं स्यात्

व्याख्या - भी अर्थात् भय अर्थ वाली तथा 'त्रा' अर्थात् रक्षा अर्थ वाली धातुओं के योग में भय के हेतु वाचक शब्द की अपादान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - चोरादा् बिभेति = चोर से डरता है।

चोराद् त्रायते = चोर से बचता है।

यहाँ 'भी' तथा 'त्रा' धातु के योग में अपादान संज्ञा हुई तथा पञ्चमी विभक्ति हुई।

भयहेतुः किम् ? भय हेतु = भय का कारण हो तभी अपादान संज्ञा होती है अन्यथा **अरण्ये बिभेति** यहाँ अरण्य में भी अपादान संज्ञा होने लगेगी। (अरण्य में डरता है) यहाँ भय का हेतु अखय नहीं है।

पराजेरसोढः (पा.सू. 1/4/26)

व्याख्या - परा उपसर्गपूर्वक जि धातु के प्रयोग में असह्य ग्लानिविशेष वाचक शब्द की अपादान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - अध्ययनात् पराजयते (अध्ययन से भागता है) यहाँ अध्ययन को नहीं सह पाता है इस अर्थ में अपादान संज्ञा हुई तथा पञ्चमी विभक्ति हुई।

असोढः किम् - असह्य अर्थ में ही होता है अन्यथा शत्रून् पराजयते यहाँ पर शत्रुओं को पराजित करता है में शत्रु की भी अपादान संज्ञा होने लगेगी।

वाराणार्थानामीप्सितः (पा.सू. 1-4-27)

व्याख्या - प्रवृत्ति से निवर्तित करने अर्थ (वारणार्थक) परक धातु के योग में ईप्सित पदार्थ की उपादान सञ्ज्ञा की जाती है।

उदाहरण - यवेभ्यो गां वारयति = जब से बैल को हटाता है यहाँ हटाना अर्थ में **यव** की अपादान सञ्ज्ञा हुई तथा पञ्चमी विभक्ति हुई।

ईप्सितः किम् - सूत्र में ईप्सित पद नहीं देते तो 'यवेभ्यः गां वारयति क्षेत्रे' यहाँ पर **क्षेत्रे** अधिकरण की भी अपादान होने लगेगी।

अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति (पा.सू. 1-4-23)

व्याख्या - व्यवधान होने पर जिससे आत्मविषयक दर्शन के अभाव की इच्छा की जाती है उसकी अपादान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - मातुः निलीयते कृष्णः = कृष्ण माता से छुपते है। यहाँ 'माता' की अपादान संज्ञा हुई फिर पञ्चमी विभक्ति हुई।

अन्तर्थौ किम् ? यदि अन्तर्धौ पद नहीं देगे।

तो **चौरान्** न दिदृक्षते = चोरों को नहीं देखना चाहता यहाँ पर भी अपादान संज्ञा होने लगेगी।

आख्यातोपयोगे (पा.सू. 1-4-19)

व्याख्या - 'नियमपूर्वक विद्याग्रहण करना' अर्थ दिखाई पड़ने पर आखयाता अर्थात् वक्ता की अपादान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - उपाध्यायाद्धीते (उपाध्याय से विद्या ग्रहण करता है) यहाँ नियमपूर्वक विद्या ग्रहण अर्थ है अतः उपाध्याय की अपादान संज्ञा हुई तथा पञ्चमी विभक्ति हुई।

उपयोगे किम् - नियमपूर्वक विद्या स्वीकार करने अर्थ में ही अपादान संज्ञा होती है अन्यथा **नटस्य गाथां** शृणोति में भी अपादान संज्ञा होने लगेगी।

भुवः प्रभवः (पा.सू. 1/4/31)

व्याख्या - भू शब्द का होना तथा प्रभव शब्द का अर्थ है प्रथम प्रकाश का स्थान। "भूधातु के कर्ता प्रथम उत्पत्ति या प्रकाशन स्थान की अपादान सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - हिमवतो गङ्गा प्रभवति = हिमालय से गङ्गा प्रकाशित होती है। यहाँ **हिमवतः** (हिमवान्) में अपादान संज्ञा हुई तथा 'अपादाने पञ्चमी' से पञ्चमी विभक्ति हुई।

(वा.) **ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च**

व्याख्या - ल्यप् प्रत्यय का लोप दिखाई पड़ने पर उसके कर्म तथा अधिकरण में पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदाहरण - प्रासादात् प्रेक्षते - प्रासादम् आरुह्य प्रेक्षत इत्यर्थः। अर्थात् - महल के ऊपर जाकर देखता है। आरुह्य यह ल्यप् लोप है इसके योग में 'प्रासाद' की अपादान संञ्ज्ञा हुई।

आसनात् प्रेक्षते - आसनम् उपविश्य प्रेक्षते (आसन में बैठकर देखता है। यहाँ भी पूर्ववत् है।

गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तीनां निमित्तम्

व्याख्या - जिस क्रिया का वाक्य में साक्षात् प्रयोग न होने प्रसङ्गवश स्वतः उसका बोध हो रहा हो वह गम्यमान क्रिया कहलाती है, इस तरह की क्रिया भी किसी भी कारक विभक्ति का निमित्त (कारण) बनती है।

उदाहरण - कस्मात् त्वम् (तुम कहाँ से) यहाँ आगतोऽसि अथवा आगच्छसि इत्यादि क्रिया गम्यमान है अतः पञ्चमी विभक्ति की प्रयोजिका है।

यतश्चाध्वकालानिमानं ततः पञ्चमी। तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ कालात्सप्तमी च वक्तव्या

व्याख्या - जिस अवधि वाचक शब्द से मार्ग अथवा काल परिच्छेद (निर्धारण) मान का ज्ञान होता है उस स्थान तथा कालवाची शब्द से पञ्चमी विभक्ति होती है। उस पञ्चम्यन्त शब्द से युक्त मार्गवाचक शब्द से प्रथमा तथा सप्तमी विभक्ति होती है और उस पञ्चम्यन्त कालवाचक शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है, ऐसा कहना चाहिए।

उदाहरण - वनाद् ग्रामो **योजनं योजने** वा (वन से गाँव एक योजन दूर है)

अन्यारादितरर्ते दिक्छब्दाञ्चूत्तरपदाजाहि युक्ते(पा.सू. 2/3/29)

व्याख्या - अन्य, आरात्, इतर, ऋते (विना) दिक्शब्द, अञ्चूत्तरपद, आच् तथा आहि प्रत्ययान्त शब्दों के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदाहरण

(1) अन्यः भिन्नः इतरः वा **कृष्णाद् =** कृष्ण से अन्य, अलग, विना। यहाँ कृष्ण में पञ्चमी विभक्ति हुई।

(2) आरात् **वनात् =** वन से समीप अथवा दूर।

(3) ऋते **कृष्णात् =** कृष्णसाक्षात्कार के विना सुख नहीं है।

(4) पूर्वो **ग्रामात् =** दिक् वाचक शब्द में पञ्चमी विभक्ति हुई (ग्राम से पूर्व)

(5) प्राक् प्रत्यक् वा. **ग्रामात् =** गाँव से पहले या बाद में यहाँ अञ्चु उत्तरपद है उसके योग से ग्राम में पञ्चमी विभक्ति हुई।

(6) दक्षिणा ग्रामात् दक्षिणादि **ग्रामात् =** (गाँव के दक्षिण में) यहाँ आच् आहि प्रत्ययान्त के योग में पञ्चमी विभक्ति हुई।

(7) **भवात्** प्रभृति आरभ्यवासेव्यः हरिः = जन्म से हरि सेव्य है।

अपपरी वर्जने (पा.सू. 1/4/88)

व्याख्या - अप तथा परि उपसर्ग वर्जन अर्थ में कर्मप्रवचनीय संज्ञक होते हैं।

आङ् मर्यादावचने (पा.सू. 1/4/89) व्याख्या - मर्यादा अर्थ का कथन किये जाने पर (आङ्) आ की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है।

- मर्यादाः = तेन विना (उसके बिना)

अभिविधिः = तत्सहितः अभिविधिः (उसके साथ)

पञ्चम्यपाङ्परिभिः (पा.सू. 2/3/10)

व्याख्या - अप, आङ् तथा परि (कर्मप्रवचनीय) के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदाहरण - अप **हरेः**, परि **हरेः** संसारः (हरि के बिना अर्थात् हरि को छोड़कर शेष सब कुछ संसार है) आ **मुक्तेः** संसारः - मुक्ति को छोड़कर संसार है।

उपर्युक्त उदाहरणों में अप, परि, आङ् की कर्म प्रवचनीय संज्ञा होने पर प्रकृत सूत्र से पञ्चमीविभक्ति हुई।

अकर्तर्यृणे पञ्चमी (पा.सू. 2/3/24)

व्याख्या - जो ऋणवाची शब्द कर्ता अर्थ में न हो किन्तु हेतु हो उससे पञ्चमी की जाती है।

उदाहरण - शताद् बद्धः = सौ रुपये करण बन्धा।

प्रत्युदाहरण - अकर्तरि किम् = शतेन बन्धितः यदि अकर्तरि पद नहीं देंगे तो **शतेन** यहाँ भी पञ्चमी विभक्ति होने लगेगी।

विभाषा गुणेऽस्त्रियाम् (पा.सू. 2/3/5)

व्याख्या - गुणवाची स्त्रीलिङ्ग भिन्न हेतु वाचक शब्द से विकल्प से पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदाहरण - जाड्यात् जाड्येन वा बद्धः (मूर्खता के कारण बांधा गया)

गुणे किम्**- धनेन** कुलम् यहाँ पर हेतु तो है पर **धन** गुण नहीं है।

अस्त्रियां किम् - स्त्रीलिङ्ग में पञ्चमी विभक्ति नहीं होती अतः **बुद्ध्या** मुक्तः में तृतीया ही हुई।

पृथग्विना नानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्

व्याख्या- पृथक् विना नाना के योग में तृतीया पञ्चमी तथा द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - पृथक् **रामेण रामात् रामं** वा।
विना रामेण **रामात् रामं** वा।
नाना **रामेण रामात् रामं** वा।

करणे च स्तोकाल्पकृच्छ्रकतिपयस्यासत्त्ववचनस्य (पा.सू. 2/3/33)

व्याख्या - द्रव्यवाची शब्द से भिन्न स्तोक अल्प कृच्छ्र तथा कतिपय शब्दों से करण अर्थ में तृतीया तथा पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदाहरण - स्तोकेन स्तोकाद्वा मुक्तः।

यहाँ स्तोक शब्द द्रव्यवाचक न होकर गुणधर्म का बोधक है।

दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च (पा.सू. 2/3/35)

व्याख्या - दूर और अन्तिक (समीप) अर्थ बोधक शब्दों में द्वितीया तृतीयाय तथा पञ्चमी विभक्तियाँ होती है।

उदाहरण - दूरं दूरात्दूरेण वा ग्रामस्य अन्तिकम् अन्तिकात्, अन्तिकेन वा ग्रामस्य।

22.6.3 षष्ठी विभक्ति विधायक सूत्र

षष्ठी शेषे (पा.सू. 2/3/50)

व्याख्या - कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्वस्वामिभावादिसम्बन्ध ही शेष, इस अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - राज्ञः पुरुषः (राजा का पुरुष) यहाँ स्वस्वामिभाव सम्बन्ध ही शेष है, राजा में सम्बन्ध होने पर षष्ठी हुई।

कर्मादीनामपि सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठ्येव - कर्म करण आदि में भी सम्बन्ध मात्र कथन होने की इच्छा पर षष्ठी विभक्ति की जाती है।

उदाहरण- सतां गतम् (सत्पुरुष सम्बन्धी गमन)

सर्पिषो जानीते (सर्पिस सम्बन्धी प्रवर्तन)

मातुः स्मरति (मातृ सम्बन्धी स्मरण)

एधोदकस्योपस्कुरुते (एधस् तथा उदक् सम्बन्धी उपस्करण)

भजे शम्भोश्चरणयोः (शम्भुः चरण सम्बन्धी भजन)

फलानां तृप्तिः (फल सम्बन्धी तृप्ति)

षष्ठीहेतु प्रयोगे (पा.सू. 2/3/26)

व्याख्या - हेतु शब्द का प्रयोग होने पर तथा किसी न किसी हेतु दिखाई पड़ने पर षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - अन्नस्य हेतोर्वसति (अन्न के निमित्त रहता है)

सर्वनाम्नस्तृतीया वा (पा.सू. 2/3/27)

व्याख्या- जहाँ हेतु शब्द के साथ किसी सर्वनाम वाचक शब्द का प्रयोग किया गया है वहाँ हेतु अर्थात् करण दिखाई पड़ने पर तृतीया और षष्ठी दोनों विभक्तियाँ होती है।

उदाहरण - केन हेतुना वसति, कस्य हेतोः (किस कारण से रहता है) यहाँ तृतीया, षष्ठी क्रमशः है।

निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्

अर्थ - निमित्त अर्थ को कहने वाले शब्दों में प्रायः सभी विभक्तियाँ की जाती है।

यथा - किं निमित्तं वसति
केन निमित्तेन
कस्मै निमित्ताय
किं कारणम्, कोहेतु किं प्रयोजनम्

षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन (पा.सू. 2/3/30)

व्याख्या - अतस् (अत सुच्) प्रत्यय के अर्थ को कहने वाले प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - ग्रामस्य दक्षिणतः (गाँव की दक्षिण दिशा)

एनपा द्वितीया (2/3/3)

व्याख्या - एनप् प्रत्ययान्त शब्द के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - दक्षिणेन ग्रामं ग्रामस्य वा। यहाँ एनप् प्रत्ययान्त दक्षिणेन के योग में द्वितीया तथा षष्ठी हुई।

सोऽविदर्थस्य करणे करणे (पा.सू. 2/3/51)

व्याख्या - ज्ञान अर्थ में भिन्न अर्थ का कथन करने वाले ज्ञा धातु के करण में शेषत्व विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - सर्पिषो ज्ञानम् (सर्पिः (घी) सम्बन्धी प्रवृत्ति) यहाँ ज्ञा धातु अवबोध से भिन्न ज्ञानपूर्वक प्रवर्तन अर्थ में प्रयुक्त है, अतः प्रकृत सूत्र से करण की शेषत्व विवक्षा में सर्पि शब्द से षष्ठी विभक्ति की गई है।

अधीगर्थदयेशां कर्मणि (पा.सू. 2/3/52)

व्याख्या - अधिक उपसर्ग पूर्वक इक् (स्मरण) तथा इसके पर्यायवाची और दय, ईश धातुओं के कर्म में शेषत्व विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - मातुः स्मरणम् (मातृ सम्बन्धी स्मरण) सर्पिषो दयनम्, ईशनम् वा (सर्पिष स्म्बन्धीदान या विनियोग)

कृञः प्रतियत्ने (पा.सू. 2/3/53)

व्याख्या - प्रतियत्न शब्द का अर्थ है - गुणाधान अर्थात् परिष्करण अतः जब प्रकृत धातु का परिष्करण अर्थ होगा तब उसके कर्म में शेषत्व विवक्षा में षष्ठी विभक्ति की जायेगी।

उदाहरण - एधोदकस्योपस्कुरुते (इन्धन जल में परिष्कृत होता है)

रुजार्थानां भाववचनानामज्वरेः (पा.सू. 2/3/54)

व्याख्या - भाववाचक कर्ता के विद्यमान होने पर ज्वर धातु को छोड़कर अन्य रोगार्थक धातुओं के कर्म में सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - चौरस्य रोगस्य रुजा (चोर के रोग का संताप)

(वा.) **अज्वरिसन्ताप्योरिति वाच्यम्**

व्याख्या - सूत्र के अधिकार के सीमित करते हुवे इस वार्तिक अनुसार - रुजार्थक धातुओं के अन्तर्गत ज्वर और सन्ताप को छोड़कर अन्य किसी भी धातु के कर्म में शेष षष्ठी की जानी चाहिए।

उदाहरण - रोगस्य चौरज्वरः चौरसन्तापो वा।

आशिषि नाथः (पा.सू. 2/3/55)

व्याख्या - आशीः अर्थ वाली नाथ धातु के कर्म में सम्बन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - सर्पिषो नाथनम् (घी सम्बन्धी शुभाशंसन)

जासिनिप्रहणनाटक्राथपिषां हिंसायाम्(पा.सू. 2/3/56)

व्याख्या - हिंसार्थक जास् नि प्र पूर्वक हन् नाट्, क्राश तथा पिष् धातु के कर्म में शेषत्व विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - (1) **चौरस्य** उज्जासनम् (चौर सम्बन्धी हिंसा)

(2) **वृषलस्य** पेषणम् (वृषल सम्बन्धी कष्ट)

व्यवहृपणोः समर्थयोः (पा.सू. 2/3/57)

व्याख्या - वि अव उपसर्ग पूर्वक समानार्थक हृ तथा पण् धातु के कर्म में शेषत्व विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - शतस्य व्यवहरणम्, पणनं वा।

(सौ रुपये से सम्बन्धित द्यूत क्रीडा अथवा लेन देन सम्बन्धी व्यवहार)

समर्थयोः किम् ? श्लाकाव्यवहारः ब्राह्मणपणनम् यहाँ व्यवहृ = गणना, पण = स्तुति अर्थ अतः 'शेषे' सूत्र से षष्ठी कर समास किया गया।

दिवस्तदर्थस्य (पा.सू. 2/3/58)

व्याख्या - द्यूतार्थक क्रय-विक्रय रूप व्यवहारार्थक दिव् धातु के कर्म षष्ठी विभक्ति की जाती है।

उदाहरण - शतस्य दीव्यति (सौ रुपये का जुआ अथवा लेन-देने करता है।)

विभाषोपसर्गे (पा.सू. 2/3/59)

व्याख्या - उपसर्ग युक्त दिव् धातु के द्यूत अथवा क्रय विक्रय व्यवहार के अर्थ प्रयुक्त होने पर उसके क्रम में विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है तथा पक्ष में द्वितीया।

उदाहरण - शतस्य शतं वा प्रतिदीव्यति। (जुएँ में सौ रुपये जीतना है या सौ रुपये का लेन देन करता है।)

प्रेष्यब्रुवोर्हविषो देवतासम्प्रदाने (पा.सू. 2/3/61)

व्याख्या - प्रेष्य तथा ब्रूहि के कर्म के देवता सम्प्रदान अर्थ में विद्यमान होने पर उष हविवाचक शब्द में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - अग्नये छागस्य हविषो बपाया मेढसः प्रेष्य अनुब्रूहि वा (अग्नि देवता के लिए छाग की वपा या मेदा सम्बन्धी छवि प्रदान करें) मैत्रावरुण के प्रति यह अध्वर्युकर्तृक सम्प्रेष है।

कृत्वोऽर्थप्रयोगे कालेऽधिकरणे (पा.सू. 2/3/64)

व्याख्या- कृत्व अर्थ वाले प्रत्ययों का प्रयोग दिखाई पड़ता है, वहाँ कालवाचक अधिकरण से सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - पञ्चकृत्वोऽह्नो भोजनम्। (दिनभार में पाँच बार भोजन) द्विरह्नो भोजनम् (दिनभर में दो बार भोजन)

कर्तृकर्मणोः कृति (पा.सू. 2/3/65)

व्याख्या - कृत्प्रत्ययान्त शब्द के योग में कर्ता तथा कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण

(1) **कृष्णस्य कृतिः** (कृष्ण की कृति) यहाँ कर्ता में षष्ठी का उदाहरण है।

(2) **जगतः कर्ता कृष्ण =** जगत् के कर्ता कृष्ण कर्म में षष्ठी का उदाहरण।

गुणकर्मणि वेष्यते - कृत्प्रत्ययान्त द्विकर्मक धातु के दिखाई पड़ने पर गौणकर्म में विकल्प से षष्ठी विकल्प से षष्ठी विभक्ति होती है, मुख्य कर्म में तो नित्य षष्ठी होती है।

उदाहरण - नेता अश्वस्व्य स्नुघ्नस्य स्नुघ्नं वा (अश्व को स्नुघ्न देश ले जाने वाला)

उभयप्राप्तौ कर्मणि (पा.सू. 2/3/66)

व्याख्या - जहाँ कृत्प्रत्ययान्त शब्द के योग में एक ही वाक्य में विद्यमान अनुक्त कर्ता तथा कर्म दोनों में षष्ठी विभक्ति प्राप्त होती है वहाँ अनुक्त कर्म में ही षष्ठी होती है।

उदाहरण- आश्चर्यो गवां दोहोऽगोपेन (अगोप के द्वारा गायों का दोहन किया गया, यह आश्चर्य है।)

(वा.) स्त्रीप्रत्यययोश्काकाश्योर्नायं नियमः

व्याख्या - 'स्त्रियां क्तिन्' सूत्र के अधिकार में विहित अक (ण्वुल्) तथा अप्रत्ययान्त शब्द के अनन्तर स्त्री प्रत्यय की विद्यमानता में उपर्युक्त सूत्र का नियम चरितार्थ नहीं होता है।

उदाहरण - भेदिका बिभित्सा वा रुद्रस्य जगतः = रुद्र के संसार का संहार करने की इच्छा।

क्तस्य च वर्तमाने (पा.सू. 2/3/67)

व्याख्या - वर्तमान काल के बोधक क्त प्रत्ययान्त शब्द के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - राज्ञां मतो बुद्धः पूजितो वा (राजाओं का सम्मत, पूजित)

अधिकरणवाचिनश्च (पा.सू. 2/3/68)

व्याख्या - अधिकरणवाचक क्त प्रत्ययान्त शब्द के योग में षष्ठी विभक्ति होती है।

उदाहरण - इदमेषामासितं शयितं गतं भुक्तं वा(यह इनका आसन है, शय्या है, गमन मार्ग है भोजन पात्र है।)

न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम् (पा.सू. 2/3/69)

व्याख्या - लादेश = शतृ शानच्, उप्रत्ययान्त शब्द उकञ् प्रत्ययान्त शब्द, अव्यय, निष्ठासञ्ज्ञक (क्त, क्तवतु) प्रत्ययान्त शब्द, खलर्थ प्रत्ययान्त शब्द (खल, शानम्, चानश्) अर्थात् शतृ प्रत्यय के तृ से लेकर तृन प्रत्ययय पर्यन्त के योग में अनुक्त कर्ता और कर्म में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है।

उदाहरण - कुर्वन् कुर्वाणो वा **सृष्टिं** हरिः = (हरि सृष्टि करते हैं)

हरिं दिदृक्षुः अलङ्करिष्णुर्वा = हरि को देखने का इच्छुक।

दैव्यान् धातुकः हरिः (दैत्यों को मारने वाला हरि)

(वा.) **कमेरनिषेधः**

व्याख्या- उक् प्रत्ययान्त कम् धातु के योग मेंषष्ठी विभक्ति का निषेध नहीं होता है।

उदाहरण - 'लक्ष्म्याः' कामुको हरिः यहाँ षष्ठी का निषेध नहीं हुआ।

अकेनोर्भविष्यदाधर्मर्ण्ययोः (पा.सू. 2/3/70)

व्याख्या - भविष्यत् काल के अर्थ में विहित 'अक्' प्रत्यय तथा भविष्यत् और अधमर्ण अर्थ में विहित 'इन' प्रत्यय के योग में षष्ठी विभक्ति नहीं होती है।

उदाहरण - सतः पालकोऽवतरति (सज्जनों का पालनहार का अवतार)

कृत्यानां कर्तरि वा (पा.सू. 2/3/71)

व्याख्या - कृत्य प्रत्यायों के योग में कर्ता में विकल्प से षष्ठी होती है।?

उदाहरण - मया मम वा सेव्यो हरिः = मेरे द्वारा हरि सेवनीय है।

तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्(पा.सू. 2/3/72)

व्याख्या - तुला और उपमा शब्द से भिन्न तुल्य या इसके अर्थ को कहने वाले(पर्यायवाची) शब्दों के योग में विकल्प से तृतीया विभक्ति होती है।

उदाहरण - तुल्यः सदृशः समो वा **कृष्णस्य कृष्णेन** वा।

चतुर्थी चाशिष्यायुष्यमद्रभद्रकुशलसुखार्थ हितैः। (पा.सू. 2/3/73)

व्याख्या - आशीर्वाद अर्थ में आयुष्य मद्र भद्र कुशल सुख अर्थ एवं उनके पर्यायवाची तथा हित शब्द के योग में चतुर्थी तथा षष्ठी विभक्ति की जाती है।

उदाहरण - आयुष्यं चिरञ्जीवीं**कृष्णाय कृष्णस्य** वा भूयात्। (कृष्ण आयुष्मान् है।)

22.7 सप्तमी विभक्ति

22.7.1 सप्तमी विभक्ति विधायक सूत्र

आधारोऽधिकरणम् (पा.सू. 1/4/45)

व्याख्या - कर्ता तथा कर्म के द्वारा तन्निष्ठ = उसमें रहने वाली क्रिया के आधारवाचक शब्द की अधिकरण सञ्ज्ञा होती है।

उदाहरण - कटे आस्ते। यहाँ पर ''कट'' अधिकरण सञ्ज्ञक है।

सप्तम्यधिकरणे च।

व्याख्या - अधिकरण संज्ञक शब्द में सप्तमी विभक्ति होती है।

उदाहरण

(1) **औपश्लेषिक -** कटे आस्ते (कट में बैठता है)

(2) **वैषयिक -** मोक्षे इच्छा अस्ति (मोक्षविषयक इच्छा)

(3) **अभिव्यापक -** सर्वस्मिन् आत्मा अस्ति (सब में आत्मा है।)

क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसङ्ख्यापनम्

व्याख्या - क्त प्रत्ययान्त शब्दों में इन् प्रत्यय युक्त होकर निष्पन्न शब्दों के कर्म में सप्तमी विभक्ति का विधान होता है।

उदाहरण - अधीती व्याकरणे (व्याकरण कर्म का अध्ययनकर्ता)

साध्वसाधु प्रयोगे च - साधु और असाधु शब्दों के योग में सप्तमी विभक्ति होती है।

उदाहरण - साधुः कृष्णः **मातरि**, असाधुः **मातुले =** कृष्ण माता के प्रति साधु और मातुल के प्रति असाधु है।

निमित्तात् कर्मयोगे

व्याख्या - निमित्त वाचक शब्द का कर्म के साथ संयोग अथवा समवाय सम्बन्ध होने पर सप्तमी विभक्ति होती है।

उदाहरण –

(1) चर्मणि द्वीपिनं हन्ति (चर्म के लिये व्याघ्र को मारता है)

(2) दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् (दाँत के लिए हाथी को मारता है।)

(3) केशेषु चमरीं हन्ति (बालों के लिए चमरी नामक मृग को मारता है।)

(4) सीम्नि पुष्कलको हतः (अण्डकोश के लिए गन्ध मृग मारा गया)

यस्य च भावेन भावलक्षणम्

व्याख्या - जिस कर्ता या कर्म में रहने वाले भाव (क्रिया) से अन्य भाव अर्थात् क्रिया का होना सूचित होता है क्रियान्तर लक्षिका क्रिया के आश्रयभूत शब्द से सप्तमी विभक्ति होती है।

उदाहरण - गोषु दुह्यमानासु गतः = (गोदोहन के समय गया)

(वा.) **अर्हाणां कर्तृत्वेऽनर्हाणामकर्तृत्वे तद्वैपरीत्ये च।**

व्याख्या - किसी क्रिया के सम्बन्ध में किसी योग्य व्यक्ति के कर्तृत्व तथा अयोग्य व्यक्ति के अकर्तृत्व की विवक्षा होने पर था इसके विपरीत दशा में भी सप्तमी विभक्ति होती है।

उदाहरण- सत्सु तरत्सु असन्त आसते= सज्जनों के तरने पर असज्जन रह जाते हैं।

षष्ठी चानादरे (पा.सू. 2/3/38)

व्याख्या - अनादर की अधिकता होने पर भावलक्षण में षष्ठी सप्तमी होती है।

उदाहरण - रुदति रुदतो वा प्राव्राजीत् = रोते हुए को संन्यासी हो गया।

स्वामीश्वराधिपतिदायाद साक्षि प्रतिभू प्रसूतैश्च

व्याख्या - स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रतिभू तथ प्रसूत इन सात शब्दों के योग में षष्ठी तथा सप्तमी विभक्ति की गयी है।

उदाहरण - (1) **गवां गोषु** स्वामी (2) **गवां गोषु** प्रसूतः।

आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्(पा.सू. 2/3/40)

व्याख्या - आयुक्त तथा कुशल शब्दों के 'निष्ठापूर्वक तत्पर, उत्सक' अर्थ के प्रयोग की दशा में षष्ठी तथा सप्तमी विभक्ति होती है।

उदाहरण - आयुक्तः कुशलो वा हरिपूजने हरिपूजनस्य वा (ईश्वराधन में लगा हुआ)

यतश्च निर्धारणम् (पा.सू. 2/3/91)

व्याख्या - जाति, गुण, क्रिया तथा सञ्ज्ञा सम्बन्धी वैशिष्ट्य के कारण जिस समुदाय से निर्धारण = पृथक्करण होता है उस समुदायवाचक शब्द से षष्ठी तथा सप्तमी विभक्ति की जाती है।

उदाहरण - जाति - नृणां नृषु वा ब्राह्मणः श्रेष्ठः।

गुण - गवां गोषु वा कृष्णा बहुक्षीरा।

क्रिया - गच्छतां गच्छत्सु वा धावञ्दीघ्रः

सञ्ज्ञा - दात्राणां छात्रेषु वा मैत्रः पटुः

पञ्चमी विभक्ते (पा.सू. 2/3/42)

उदाहरण - माथुराः पाटलिपुत्रेभ्यः आढ्यवराः (पथुरा वाले पटनावालों से धनी है)

साधुनिपुणाभ्यामर्चायां सप्तम्यप्रतेः

व्याख्या - साधु तथा निपुण शब्दों से जब प्रशंसा या आदर प्रकट हो तथा इसके साथ जब प्रति का प्रयोग न हो तो, इन दोनों शब्दों के योग में सप्तमी होती है।

उदाहरण - मातरि साधुर्निपुणो वा (माता के लिए भला)

प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च

व्याख्या - प्रसित तथा उत्सुक शब्दों के योग में तृतीया और सप्तमी दोनों होती है।

उदाहरण - प्रसित उत्सुको वा हरिणा हरौ वा (हरि की सेवा में तत्पर)

नक्षत्रे च लुपि (2/3/45)

व्याख्या - मूल शब्द नक्षत्रार्थक हो तथा उसके प्रत्यय का लोप हुआ हो तो उस नक्षत्रवाचक शब्द से अधिकरण अर्थ में तृतीया या सप्तमी होती है।

उदाहरण - मूलेनावाहयेद्देवीं श्रवणेन विसर्जयेत = मूल में देवी का आवाहन करें तथा श्रवण में विसर्जन करना चाहिए।

सप्तमीपञ्म्यौ कारकमध्ये (पा.सूत्र 2/3/7)

व्याख्या - दो कारक शक्तियों के बीच में जो काल या अध्व (मार्ग की दूरी) होती है। उनके वाचक शब्दों में सप्तमी या पञ्चमी विभक्ति होती है।

उदाहरण - इहस्योऽयं **क्रोशे क्रोशाद्वा** लक्ष्यं विध्येत् = (यहाँ रहते हुए कोश तक लक्ष्य भेदन करता है।)

अधिरीश्वरे (पा.सू. 1/4/97)

व्याख्या - स्वस्वामिभाव सम्बन्ध अर्थ में अधि की कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञा होती है।

(इसका सम्बन्ध अग्रिम सूत्र से है)

यस्मादधिकं यस्य चेश्वर वचनं तत्र सप्तमी

व्याख्या - जिससे अधिकता बताई जाए या जिसका स्वामी होना बताया जाए उन शब्दों में कर्मप्रवचनीय के योग में सप्तमी होती है।

उदाहरण - उपपरार्धे हरेर्गुणाः (हरि के गुण पराई से भी अधिक है)

विभाषा कृञि (पा.सू. 1/4/98)

व्याख्या - कृ धातु के साथ 'अधि' का प्रयोग दिखाई पड़ने पर इसकी विकल्प से कर्मप्रवचनीय सञ्ज्ञ होगी, यदि प्रयोग से ईश्वरत्व अर्थ गम्यमान हो तो।

उदाहरण - यदत्र मामधिकरिष्यति (जो मुझे यहाँ नियुक्त करेगा।)

22.8 पारिभाषिक शब्दावली

कारक - साक्षात् परम्परया वा क्रिया को जो निष्पन्न करे वह कारक है। कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान एवं अधिकरण ये छः प्रकार के कारक है।

प्रातिपदिकार्थ - व्यापक रूप से अर्थ का बोध कराने वाले को प्रातिपदिकार्थ कहते हैं।

कर्ता -किसी क्रिया के निष्पादन में स्वतन्त्र (प्रधान) कहे जाने वाले कारक की कर्ता संज्ञा होती है|

कर्म - कर्ता के द्वारा निष्पन्न होने वाली क्रिया से अत्यधिक ईप्सित कारक की कर्म संज्ञा होती है।

करण - किसी क्रिया की सिद्धि में जो अत्यधिक सहायक होता है उसकी करण सञ्ज्ञा होती है।

सम्बोधन -सम्बोधन का अर्थ है - अभिमुखीकृत्य ज्ञापन। अर्थात् जो वक्ता के अभिमुख नहीं है उसे अभिमुख करके कुछ कहना। वक्ता के द्वारा प्रयुक्त वचन को ध्यान में रखकर उसे स्वीकार करने में आदर भाव होना।

कर्मप्रवचनीय - सूत्रकार पाणिनि तथा उनसे उत्तरवर्ती वैयाकरणों ने उपसर्गों के समान ही निपातों के एक अन्य वर्ग को 'कर्मप्रवचनीय' नाम दिया हैं |

सम्प्रदान- दान क्रिया के कर्म द्वारा कर्ता जिसे चाहता है उसकी सम्प्रदानसञ्ज्ञा होती है।

अपाय - अपाय शब्द का अर्थ है विश्लेष, विभाग, पृथक्करण। ध्रुव निश्चित धुरि से विश्लेष होने पर अवधिभूत कारक की अपादान संज्ञा होती है। यहाँ ध्रुव बुद्धिपरिकल्पित भी होता है।

22.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कारक का लक्षण बताये।
2. प्रातिपदिकार्थ से क्या तात्पर्य है ?
3. लिङ्ग मात्राद्याधिक्ये का उदाहरण समझाये।
4. अभिहित का तात्पर्य क्या है ?
5. दुह्याच्पच्दण्ड .... कारिका को पूरा करे।
6. नमः स्वस्तिस्वाहा ...... सूत्र को सोदाहरण समझाएँ।
7. उपादान संज्ञा विधायक सूत्र बतायें।
8. 'सम्बन्ध' कारक क्यों नहीं है ?
9. अधिकारणकारक के भेद बताते हुए प्रत्येक का उदाहरण समझाएँ।
10. 'निर्धारण' अर्थ में कौन-कौन विभक्ति होत है ?
11. उपपद विभक्ति तथा कारकविभक्ति में अन्तर स्पष्ट करें।

22.10सारांश

इस प्रकार हमने इस इकाई में व्याकरण शास्त्र की परम्परा के साथ साथ सिद्धान्तकौमुदी का भी ज्ञान किया । यह भी जाना कि प्रतिपादिकार्थ विचार**,** कर्मसंज्ञा**,** कर्मप्रवचनीय संज्ञा**,** सम्प्रदान अपादान अधिकरण आदि संज्ञाओं की व्याख्या सिद्धान्तकौमुदी।

में किस प्रकार की गई है । प्रथमा विभक्ति से लेकर सप्तमी विभक्ति पर्यन्त सभी विभक्तियों का ज्ञान सिद्धान्तकौमुदी के आलोक में हमने इस इकाई में किया है ।

22.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, गिरिधर, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2014.
2. चन्द्र, ईश्वर एवं सिमलेखा, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली 2015.
3. पाण्डेय, गोपालदत्त, वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली 2015.